❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर । किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ३ | गौराब्द ४७१, मास—पद्मनाभ ८, वार—प्रद्युम्न | संख्या ४

मङ्गलवार, ३१ भाद्रपद, सम्वत् २०१४, १७ सितम्बर १९५७

श्रीश्रीकुञ्जविहार्य्यष्टकम्

[श्रीमद्-रूप-गोस्वामि-विरचितम्]

नमः कुञ्जविहारिणे

इन्द्रनीलमणि-मञ्जुल-वर्णः फुल्लनीप-कुसुमाञ्चित-कर्णः ।
कृष्णलाभिरकृशोरसि हारी सुन्दरो जयति कुञ्जविहारी ॥१॥

राधिका-वदनचन्द्र-चकोरः सर्व्ववल्लववधू-धृतिचौरः ।
चर्चरी-चतुरताञ्चित-चारी-चारतो जयति कुञ्जविहारी ॥२॥

सर्वतः प्रथित-कौलिकपर्व-ध्वंसनेन हृत-वासव-गर्वः ।
गोष्ठ-रक्षण कृते गिरिधारी-लीलया जयति कुञ्जविहारी ॥३॥

रागमण्डल-विभूषित-वंशी-विभ्रमेण मदनोत्सव—शंसी ।
स्तूयमान-चरितः शुकशारी-श्रेणिभिर्जयति कुञ्जविहारी ॥४॥

शातकुम्भ-रुचिहारी-दुकूलः केकि चन्द्रक-विराजित-चूलः ।
नव्ययौवन-लसद्व्रजनारी-रञ्जनो जयति कुञ्जविहारी ॥५॥

स्थासकीकृत-सुगन्धि-पटीरः स्वर्णकाञ्चि-परिशोभि-कटीरः ।
राधिकोन्नत-पयोधर-वारी-कुञ्जरो जयति कुञ्जविहारी ॥६॥
गैरधातु-तिलकोज्वल-भालः केलिचञ्चलित-चम्पक-मालः ।
अद्रि-कन्दर-गृहेष्वभिसारी सुभ्रुवां जयति कुञ्जविहारी ॥७॥
विभ्रमोच्चल-दृगञ्चल-नृत्य-क्षिप्त-गोपललनाखिल-कृत्यः ।
प्रेममत्त-वृषभानु-कुमारी-नागरो जयति कुञ्जविहारी ॥८॥
अष्टकं मधुर-कुञ्जविहारि-क्रीड़या पठति यः किल हारि ।
अनुवादः— य प्रयाति विलसत् परभागं तस्य पादकमलार्च्चन-रागम् ॥९॥

जिनकी कान्ति इन्द्रनीलमणिकी तरह अतिशय मनोहर है, जिनके कर्णयुगल कदम्बके विकसित पुष्पोंसे सुशोभित हैं और जिनके विशाल वक्षःस्थलपर गुञ्जाहार शोभा पा रहा है, उन परम सुन्दर कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥१॥

जो श्रीमती राधिकाके मुखचन्द्रके लिये चकोर-स्वरूप हैं, जो निखिल व्रजयुवतियोंका धैर्य छुड़ा देते हैं और जो चर्चरीताल पर अतीव सुन्दर नृत्य-कौशलका प्रदर्शन करते हैं, उन कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥२॥

जिन्होंने व्रजवासी गोपोंके द्वारा मनाये जानेवाले प्रसिद्ध पर्वको—जिसमें इन्द्रकी पूजा उनकी वंश-परम्परासे चलती आरही थी—बन्द करवा दिया और उसके कारण अत्यन्त कुपित देवराजका जिन्होंने गर्व चूर्ण-विचूर्ण कर दिया था तथा गोष्ठकी रक्षाके लिए गोवर्द्धनको धारण किया था, उन कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥३॥

समस्त राग-रागिनियोंसे विभूषित वंशीके मधुर स्वरसे जो प्रेयसी-वृन्दके प्रति मदनोत्सवकी घोषणा करते हैं, एवं वंशीनादको सुनकर अनुरक्त हुआ शुक-शारिकाओंका समूह जिनके चरित्रका गुणगान करता है, उन कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥४॥

जिनका पीताम्बर सुवर्ण-कान्तिसे भी अधिक उज्ज्वल है, जिनकी चूड़ा मयूरके पंखोंसे सुशोभित है तथा जो नव-यौवनसे सुशोभित व्रज-युवतियोंके चित्तको आनन्दित करनेमें सर्वदा उद्यत हैं, उन कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥५॥

जिनका समस्त अङ्ग सुगन्धित चंदनसे चर्चित है, जिनका कटि-प्रदेश सोनेकी करधनीसे शोभित है, जो श्रीमती राधिकाके युगल उन्नत कुचोंकी शृङ्खलासे बँधे हुए कुञ्जरके समान सुशोभित हैं, उन कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥६॥

जिनका ललाट गैरिक धातुसे प्रस्तुत तिलककी रचनासे अत्यन्त उज्ज्वल है, जिनके वक्षःस्थल पर विलासमयी चम्पाके फूलोंकी माला दोदुल्यमान हो रही है, जो गोपकुमारियोंके साथ पर्वत-कन्दरारूप संकेत स्थानमें अभिसार करनेवाले हैं, उन कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥७॥

जिन्होंने स्मर-विलासमें अपने चंचल कटाक्षोंसे गोपललनाओंको उनके निखिल कार्योंसे दूर कर दिया है तथा जो प्रेमोन्मत्त वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाके चित्तको रञ्जन करनेवाले रसिक नायक-स्वरूप हैं, उन कुञ्जविहारी श्रीकृष्णकी जय हो ॥८॥

जो कृष्णकी लीलाओंसे पूर्ण, अतिशय मधुर और मनोहर इस पद्याष्टकका पाठ करते हैं उनको श्री-कृष्णके चरणकमलोंकी पूजामें विलक्षण अनुराग प्राप्त होता है ॥९॥

श्रीश्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें पुनः प्रश्न

प्रश्न—१. श्रीसज्जनतोषणीमें (श्रीभागवत पत्रिका वर्ष ३, संख्या ३, पृष्ठ ५२ में) लिखा गया है—'गुरुदेव साक्षात् भगवत्-प्रकाश होनेपर भी श्रीकृष्णके प्रियतमदास हैं।'

'साक्षात् भगवत्'—शब्दका क्या अर्थ है? 'साक्षात्-भगवत प्रकाश होनेपर भी श्रीकृष्ण चैतन्यके प्रियतमदास हैं'—कहनेका क्या तात्पर्य है? साक्षात् भगवत्-प्रकाश कहनेसे क्या स्वयं श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभुका बोध नहीं होता?

प्रश्न—२. शास्त्रमें गुरुदेवको स्वयं भगवान् कहा गया है, तथापि उनको 'भगवान्का प्रिय' अथवा "कृष्णका प्रकाश-स्वरूप' क्यों जानना चाहिये? ऐसा जाननेका कारण क्या है? शास्त्रमें एक प्रकार लिखा होनेपर दूसरी प्रकारकी भावना ही क्यों करें?

प्रश्न—३. 'प्रत्येक वैष्णव यह जानता है कि गुरुदेव सन्धिनी, ह्लादिनी और सम्वित् शक्तियोंके मूलाधार हैं, उनमें केवलमात्र संवित्-शक्तिका ही आरोप करनेसे सहजिया या बाउल मत हो पड़ता है'—इस कथनका तात्पर्य क्या है?

प्रश्न—४. श्रीचैतन्यचरितामृत १०वें परिच्छेदमें—

'प्रभु कहे—ईश्वर हय परम स्वतंत्र।
ईश्वरेर कृपा नहे वेद परतंत्र॥'

मायापुरसे प्रकाशित इस ग्रन्थकी व्याख्यामें गुरुदेवको श्रीकृष्ण माना गया है। श्रीमन्महाप्रभु यदि अपने गुरुदेवको श्रीकृष्ण मानते हों तो दूसरोंके लिये ऐसा क्यों नहीं माना जाय?

प्रश्न—५. 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परंब्रह्म तस्मात् सम्पूजयेत् सदा॥'

क्या 'परं ब्रह्म' से स्वयं भगवान् श्रीकृष्णका बोध नहीं होता?

प्रश्न—६. 'यो मंत्रः स गुरुः साक्षात् यो गुरु स हरिः स्मृतः।' यहाँ गुरुको हरि क्यों कहा गया है?

प्रश्न—७. 'अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव जनार्दनः' यहाँ गुरुदेवको जनार्दन कहनेका तात्पर्य क्या है?

प्रश्न—८. "ईश्वर-स्वरूप-तत्त्व मात्र गुरु जानि।
वैकुण्ठेर पति मंत्रदाता शिरोमणि॥
"शिक्षागुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ—एइ दुइ रूप॥
जीवे साक्षात् नाहि ताते गुरु चैत्तरूपे।
शिक्षा गुरु हय कृष्ण महान्त-स्वरूपे॥"

उपर्युक्त पंक्तियोंमें दीक्षागुरुको वैकुण्ठाधिपति नारायण और शिक्षागुरुको गोलोकपति श्रीकृष्ण कहा गया है। क्या इन दोनों प्रमाणों द्वारा गुरुदेवकी भगवत्ता प्रमाणित नहीं होती?

प्रश्न—९. 'यस्य साक्षात् भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ।' क्या यहाँ ज्ञानदीपप्रद गुरुको साक्षात् भगवत्-स्वरूप नहीं कहा गया है?

प्रश्न—१०. चिन्तामणिर्जयति सोमगिरिर्गुरुर्मे
शिक्षा गुरुश्च भगवान् शिखिपुच्छ-मौलि।

इस श्लोकमें क्या शिक्षागुरुको शिखिपुच्छधारी भगवान् श्रीकृष्ण नहीं कहा गया है?

सदुत्तर

स्वयंरूप और स्वयं-प्रकाश एक नहीं

१ले प्रश्नका उत्तर—स्वयं-रूप और स्वयं-प्रकाश एक चिज नहीं हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही स्वयं रूप विग्रह हैं। गुरुदेव भगवत्-प्रकाश हैं। भगवत्-प्रकाश कहनेसे श्रीकृष्णका बोध नहीं होता।

जो अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वको समझनेका प्रयत्न नहीं करते, वे विशुद्ध-तत्त्वको कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।

गुरुदेवको स्वयं-भगवान् माननेसे मायावाद या बौद्धवाद हो पड़ता है, गुरुदेव प्रकाश-तत्त्व हैं।

उत्तर—२. जो लोग भगवान्‌का आकार, नाम, गुण और उनकी लीला स्वीकार नहीं करते, जो परलोकमें जीवोंके नाम, रूप, गुण और उनकी क्रिया का अस्तित्व नहीं मानते, वे नास्तिक या निर्विशेषवादी हैं। उनका कहना है—माया अर्थात् अज्ञानके कारण इस व्यवहारिक जगत्‌में नाम, रूप, गुण और लीला आदि कल्पित हैं; वास्तवमें परमार्थ जगत्‌में उस प्रकारका कोई भेद नहीं है। वहाँ पर तो केवल निरीश्वर बौद्धवाद अथवा शंकर प्रवर्तित केवलाद्वैत या मायावाद वर्त्तमान है। इसी निर्विशेषवादने लोक-वंचनाके लिये गणेश, सूर्य, शक्ति, शिव और विष्णु-इन पाँच देवताओंकी कल्पनाकर साधनकी समाप्तिपर सिद्धावस्थामें चिन्मय-विशेषरहित जड़ीय नास्तिकताका प्रचार किया है। इसलिये श्रीचैतन्य महाप्रभुने निर्विशेषवादी मायावादियोंको श्रीकृष्ण चरणोंमें अपराधी बतलाया है। उपर्युक्त मायावादियोंकी धारणानुसार श्रीगुरुदेवको श्रीकृष्ण मानने से वास्तवमें पाषण्डता होती है। अतः गुरुदेवको कृष्णका प्रकाश जानना चाहिये। वैष्णवजन पाषण्ड-मायावादी नहीं हैं। वे गुरुको 'कृष्ण' न मानकर कृष्णका प्रकाश मानते हैं। वैष्णवजन नास्तिक नहीं होते, वे गोलोककी नित्यता, कृष्णके नाम, रूप, गुण और उनकी लीलाकी नित्यता, गुरुदेवकी नित्यता तथा वैकुंठमें अपनी पृथक् सत्ताकी नित्यता स्वीकार करते हैं; वे मायावादियोंकी तरह गुरुको स्वयं, कृष्ण नहीं मानते, बल्कि कृष्णका परमप्रिय भक्त मानते हैं।

गुरुदेव कोई मायिक वस्तु या बद्ध जीव नहीं हैं, वे कृष्णसे पृथक् हैं।

शास्त्रोंमें गुरुदेवको कहीं भी मायाका दास अथवा मरणशील नहीं कहा गया है। बल्कि प्रत्येक शिष्य गुरुदेवको मायिक वस्तु न समझकर उनको नित्य भगवत् सम्बन्धीय अथवा साक्षात् भगवत् वस्तु समझे—शास्त्रोंका यही उद्देश्य है। पाषण्ड-मायावादी भगवान्, गुरु और सेवक—इनकी पृथक्-पृथक् सत्ता नहीं स्वीकार करते तथा गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें भक्तोंके साथ तर्क-वितर्क किया करते हैं। यदि कृष्णसे गुरुदेवकी सत्ता पृथक् न मानी जाय तो शास्त्रोक्त भक्ति मार्गको छोड़ देना होता है। जो मूढ़ अन्तरमें मायावादका पोषण करता है तथा ऊपरसे भगवद्भक्त वैष्णवके रूपमें अपना परिचय देता है, वह नास्तिक मायावादको ही श्रेष्ठ मानेगा।

बाउल मतानुसार प्रत्येक पुरुष कृष्ण है और प्रत्येक नारी राधा है; यह शास्त्र-विरुद्ध मत है

उत्तर ३—बाउल या सहिजिया लोगोंका कथन है—प्रत्येक पुरुष—कृष्ण है और प्रत्येक नारी—राधा है। अतएव पुरुष-प्रकृतिका जड़ संभोग ही राधा-कृष्णकी लीला है। मूर्ख मायावादी और बाउल अपनेको कृष्णके साथ अभिन्न मानकर अपने शिष्यों को गुरुदेवमें कृष्णका आरोप करनेकी शिक्षा देते हैं। परन्तु शास्त्र ऐसे विचारोंका कतई समर्थन नहीं करते।

श्रीगुरुदेव ईश्वर हैं और श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं

उत्तर ४—मायापुरसे प्रकाशित चैतन्यचरितामृतके भाष्यमें (प्रथम संस्करणमें) लिखा है—'मेरे गुरुदेव ईश्वर हैं अर्थात् जगत्‌के प्रभु हैं। सुतरां वे साधारण जीवोंके नियामक स्मृति-शास्त्रके अधीन नहीं हैं। ईश्वर अर्थात् सामर्थ्यवान गुरुदेवकी कृपा वैदिक शासनके अधीन नहीं हुआ करती।' (चै.च.पृष्ठ १०३७) विरुद्धवादियोंने मायावादियोंके साथ मिल कर श्रीमन्महाप्रभुसे गुरुदेवको कृष्ण कहलवाया है। किन्तु श्रीचैतन्यचरितामृतकी व्याख्या वैसी नहीं हो सकती। श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं और गुरुदेव ईश्वर हैं।

ब्रह्मा, शिवादि गुणावतार हैं, स्वयं-भगवान नहीं हैं

उत्तर ५—'गुरुर्ब्रह्मा' श्लोककी व्याख्या निर्विशेष

मतके अनुसार होनेसे भक्ति-मार्गसे छुट्टी होजाती है। उस समय ब्रह्मा परंब्रह्म हैं, शिव परंब्रह्म हैं, विष्णु परंब्रह्म हैं; अतएव ब्रह्मका बाजार बैठ जाता है। परंब्रह्म कृष्णकी एक शक्तिके परिचय मात्र हैं। वे अनन्त शक्तिमान हैं। उनको गुरु, ब्रह्मा और शिव आदिके साथ समस्त विषयोंमें अभेद माननेसे शास्त्र को ध्वंस करना हो जाता है। ब्रह्मा, शिव आदि गुणावतार हैं। ये कृष्णके गुणावतार होने पर भी ६० गुणोंसे युक्त नारायण नहीं हैं अथवा ६४ गुणोंसे युक्त कृष्ण नहीं हैं। बल्कि ५५ गुणोंसे युक्त ईश्वर हैं। ये ५० गुणोंवाले बद्ध जीवोंके ईश्वर हैं। अनेक समय जीव ही शिव और ब्रह्मा होते हैं।

हरि, गुरु और मंत्र अप्राकृत वस्तु होनेके कारण एक होकर भी पृथक् हैं

उत्तर ६—मंत्र, गुरु और हरि प्राकृत गुणोंके अधीन नहीं होते। ये तीनों वस्तुएँ साक्षात् अप्राकृत हरि हैं अर्थात् मायाके अधीन नहीं हैं। चित-राज्यमें इनकी भिन्न-भिन्न उपयोगिता और विशेषता है। मायावादी इसे जानते नहीं हैं। मायावादियोंका कहना है कि—गोलोकमें नित्य विचित्रता नहीं है। विचित्रता या विशेषता तो केवल मायाके राज्यमें ही अज्ञानताके कारण कल्पित होती है। वैष्णवजन मायावादियोंकी इन कल्पित मिथ्या बातोंपर विश्वास नहीं करते।

श्रीगुरुदेवके प्रति प्राकृत बुद्धिको दूर करनेके उद्देश्यसे ही उनको साक्षात् भगवान् कहा गया है

उत्तर ७—गुरुदेवको कोई मायिक बुद्धि द्वारा मरणशील न समझ ले, इसलिये शास्त्रोंमें जगह-जगह उनको भगवान्के समान अथवा भगवान् कहा गया है। असुरगण मायावादियोंकी बुद्धिसे मोहित होकर त्रिगुणातीत भगवदभिन्न गुरुतत्त्वको या तो कृष्णसे एक कर देते हैं अथवा जड़ बुद्धि द्वारा उन्हें मरण-शील मानने लगते हैं।

उत्तर ८—"ईश्वर-स्वरूप-तत्त्व मात्र गुरु जानि।
वैकुण्ठ पति मंत्रदाता शिरोमणि॥"

यह अद्भुत कविता न जाने कहाँसे ली गयी है? यह कोई प्रमाणिक कविता नहीं है, अधिकन्तु शास्त्र-विरुद्ध है।

गुरु नित्य हैं, अतएव श्रीकृष्ण और गुरुका भेद भी नित्य है

उत्तर ९—'शिक्षागुरुके त जानि कृष्णेर स्वरूप' प्रभृत श्लोकोंका अर्थ अवगत होनेके लिए श्रीचैतन्य-चरितामृत भाष्यका पाठ करेंगे। कोई भी भक्त किसी भी दिन गुरुदेवको कृष्णमें निर्वाण मुक्ति करवानेका समर्थन नहीं कर सकता। गुरुद्रोही व्यक्तियोंकी गुरु को संहार करनेकी प्रवृत्ति नितान्त घृणीत और अपराधजनक है। यदि कृष्ण और गुरुदेवमें कोई अप्राकृत भेद नहीं रहे, तो गुरुका पद ही लुप्त हो जाय।

उत्तर १०—कृष्णकर्णामृतके पहले श्लोकमें अन्तर्यामी चैत्यगुरुकी जो बात कही गयी है, वह भक्तश्रेष्ठ महान्त गुरुके सम्बन्धमें लागू नहीं है।

—ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

निरन्तर कृष्ण-नाम करो अर्थात् दैहिक कार्योंको पूरा करनेके लिए जितने विश्रामकी आवश्यता हो, उसके अतिरिक्त सब समय आर्त्त होकर कृष्ण-नाम लो। इससे नामापराध क्षय होता है। दूसरे किसी भी शुभ-कर्म या प्रायश्चित्तसे नामापराध क्षय नहीं होता।

—श्रीहरिनाम-चिन्तामणि

निश्चय

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ३, से आगे]

पाँचवाँ प्रमेय—दो प्रकार के जीव—मुक्त और बद्ध

आम्नायकी शिक्षा है कि—अपने लिये सुखकी कामना करनेवाले जीव निकट स्थित मायाका वरण कर सुख-दुःख भोगते हैं। कर्म--माया द्वारा रचित एक गोरखधन्धेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिन्होंने मायामें प्रवेश नहीं किया है, उनके साथ कर्मका कोई सम्बन्ध नहीं। जीव दुर्भाग्यवश मायाके गोरखधन्धेमें फँस कर स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके द्वारा मायिक् जगत्का भोग करता है। इस गोरख-धन्धेका कोई ओर-छोर नहीं है। किन्तु जीव जिस प्रकार अति सहज ही इसमें फँस गया था, उसी प्रकार इससे मुक्त भी अत्यन्त सहज ही हो सकता है।

छठा प्रमेय—नित्य-बद्ध जीव सत्संगके प्रभाव से मुक्ति लाभ करता है

मायाके गोरखधन्धेमें फँसे हुए जीवोंको 'नित्यबद्ध' कहा जा सकता है। 'नित्य'-शब्द मायिक कालके सम्बन्धमें प्रयुक्त है। चित् वस्तुके स्पर्श से चित् कालके उदय होनेपर उसकी अनित्यता उपलब्ध होती है। साधुसंतोंकी कृपासे बद्धजीव जन्म-जन्मान्तरोंकी अर्जित भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके प्रभावसे मायासे मुक्त होता है।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेत्-
जनस्य तर्ह्यच्युत सत्-समागमः।
सत्-सङ्गमो यर्हि तदेव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥

(श्रीमद्भा० १०। ५१। ३४)

सत्संगसे संसार-दुःखका क्षय होता है तथा श्रीकृष्णकी कृपामें दृढ़ विश्वास होता है। उस समय जीव भजनके प्रभावसे तथा भगवत्-कृपासे माया-बन्धनका छेदन कर कृष्ण सेवा लाभ करता है और नित्य मुक्त जीवोंके साथ सालोक्य प्राप्त करता है।

सातवाँ प्रमेय—अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध

कृष्ण और कृष्णेतर वस्तुओंमें परस्पर अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध है। इसीलिये वेदोंमें कहीं-कहीं अभेदसूचक और कहीं-कहीं भेदसूचक मंत्र देखे जाते हैं। सिद्धान्त दो प्रकारके होते हैं—तात्त्विक और अतात्त्विक। अतात्त्विक-सिद्धान्त वेदका एकदेशीय विचार है और तात्त्विक-सिद्धान्त-सम्पूर्ण वेदका सार तात्पर्य होता है। तात्त्विक सिद्धान्त अर्थात आम्नाय से यह विदित होता है कि श्रीकृष्ण एक अद्वय-तत्त्व और सर्वमय हैं। वे एक ही वस्तु हैं तथा सर्व-शक्तिमान हैं। शक्ति परिणत जीव और जगत् वर्त्तमान रहने पर भी वस्तु एक ही है। तत्त्वकी दृष्टिसे वस्तु अद्वय अर्थात् नित्य अभेद है; परन्तु शक्तिगत विचारसे शक्तिके परिणाम-स्वरूप कृष्णके अतिरिक्त जो कुछ दीख पड़ता है, वह सब कृष्णसे नित्य भिन्न है। यह नित्य भेदा-भेद स्वभावतः अचिन्त्य होता है। क्योंकि जीवकी मायिक बुद्धि इस भेदाभेदका विवेचन करनेमें असमर्थ होती है। सौभाग्यवश जब उनमें अप्राकृत बुद्धिका उदय होता है, तभी अचिन्त्यभेदाभेदयुक्त शुद्ध ज्ञान अनुभूत हो सकता है। आम्नाय-वाक्योंमें दृढ़ विश्वास होनेपर कृष्णकी कृपासे भक्तजन इस अचिन्त्य भेदाभेद ज्ञानको अल्प समयमें ही स्पष्टरूपमें देख पाते हैं। इस विषयमें जड़ तर्क-वितर्क करने पर मतवाद हो पड़ता है।

उक्त सात प्रमेयोंके ज्ञानको सम्बन्ध-ज्ञान कहते हैं

आत्म-समाधि द्वारा पाया जानेवाला इन सात प्रमेयोंका ज्ञान जब आम्नायके बलसे साधकके हृदयमें

उदित हो जाय, तब ऐसा कहा जा सकता है कि उसे सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त हो गया है। श्रीसनातन गोस्वामीके प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीमन्महाप्रभुजीने सम्बन्ध-ज्ञान-तत्त्वको विशद रूपमें बतलाया है—सनातन गोस्वामीके प्रश्न ये हैं—'(१) मैं कौन हूँ ? (२) ये तीनों ताप मुझे क्यों दग्ध कर रहे हैं ? और (३) मेरा कल्याण कैसे हो सकता है ?' जो लोग वास्तवमें कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं, वे श्रीगुरुदेवसे अवश्य ही इन प्रश्नोंको पूछेंगे । श्रीगुरुदेवके निकट सदुत्तर पाकर उनके सारे संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और कृष्ण भक्तिके प्रति दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है। तत्त्व-ज्ञानको व्यर्थ समझ कर उसकी शिक्षामें अवहेला करना उचित नहीं । क्योंकि इससे कृष्ण-भक्ति सुदृढ़ होती है।

उपर्युक्त एक प्रमाण और सात प्रमेयोंका सार

अब देखिये, दस मूलोंमेंसे प्रथम आठ मूलोंमें—'प्रमाण' और 'सम्बन्ध-ज्ञान' सम्बन्धी सिद्धान्तोंका विवेचन किया गया है । श्रीचैतन्यमहाप्रभुने सनातन गोस्वामीके प्रश्नोंके जो उत्तर दिये हैं, उसमें प्रमाण और प्रमेयका विचार अतीव चमत्कारपूर्ण और स्पष्ट है—

(क) प्रमाण—

(१) वेद ही प्रमाण हैं। वेदमें सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वका निर्णय किया गया है ।

(ख) प्रमेय—

(१) कृष्ण ही परम तत्त्व हैं । अद्वय-ज्ञानतत्त्व स्वयं भगवान् हैं । ये सर्वैश्वर्यपूर्ण हैं। इनका नित्य-धाम—गोलोक वृन्दावन है । ये ज्ञान, योग, और भक्ति—इन त्रिविध साधनों द्वारा क्रमशः ब्रह्म, आत्मा और भगवान्के रूपमें प्रकाशित हैं ।

(२) कृष्ण अनन्त अचिन्त्य शक्तियोंसे युक्त हैं। इन अनन्त शक्तियोंमें चित-शक्ति, जीव शक्ति और माया शक्ति—ये तीन शक्तियाँ प्रधान हैं।

(३) कृष्ण रस-स्वरूप हैं।

(४) जीवका स्वरूप नित्य-कृष्णदास है । वह भगवान्का विभिन्नांश तत्त्व है । जीवकी तुलना सूर्यके किरण-कण अथवा अग्निके स्फुलिङ्गके साथ दी जा सकती है।

(५) विभिन्नांश तत्त्व जीव दो प्रकारके होते हैं—नित्यमुक्त और नित्यबद्ध । नित्यमुक्त जीव कृष्णकी नित्यसेवा कर प्रेमानन्दमें विभोर रहते हैं।

(६) नित्यबद्ध जीव कृष्णको भूलनेके कारण अनादिकालसे कृष्ण बहिर्मुख होते हैं । माया इन बहिर्मुख जीवोंको अनादिकालसे ही संसार-दुखका भोग कराती है ।

(७) जीव कृष्णकी तटस्था शक्तिके परिणाम हैं । इनका कृष्णके साथ अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध है।

आठवाँ प्रमेय—कृष्णभक्ति ही अभिधेय है

सम्बन्ध ज्ञान उदय होनेपर अभिधेय (साधन) आरम्भ होता है । कृष्ण-भक्ति ही अभिधेय है। तात्पर्य यह कि शास्त्रमें जीवोंके चरम कर्त्तव्यका निरूपण किया गया है । उस चरम कर्त्तव्यका नाम ही 'अभिधेय' है। कर्म, योग और ज्ञान—ये अत्यन्त तुच्छ और गौण साधन हैं । ये भक्तिकी सहायताके बिना स्वतन्त्ररूपमें कोई फल नहीं प्रदान कर सकते हैं।

साधन-भक्तिको ही अभिधेय कहते हैं । यह दो प्रकारकी होती है—वैधी और रागानुगा। वैधी-भक्तिके ६४ अङ्ग हैं। इन ६४ अङ्गोंको पुनः ९ अङ्गोंमें लाया गया है, जिसे नवधा भक्ति कहते हैं—

श्रवणं कीर्त्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम् ।
अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्म-निवेदनम् ॥
(श्रीमद्भा० ७।५।२३)

कर्म और ज्ञानसे भक्तिका भेद

तन, मन और वचनसे श्रीकृष्णके चरणोंमें चित्त को लगानेका नाम ही भक्ति है। कर्म और ज्ञानसे भक्तिका अत्यन्त सूक्ष्म भेद है। कहीं-कहीं कर्म और ज्ञान तथा भक्तिके अंग-समूह बिलकुल एक जैसे ही दीख पड़ते हैं। इन अंगोंमें जब भक्तिके अतिरिक्त अन्य कामनाएँ संयुक्त होती हैं, तब उन्हें कर्माङ्ग कहते हैं; जब वे शुष्क-ब्रह्म चिन्तासे युक्त होते हैं, तब उन्हें

ज्ञानाङ्ग कहते हैं और जब वे कर्म और ज्ञान से शून्य होकर केवलमात्र कृष्ण-सेवाके उद्देश्यसे आचरित हों, तब उन्हें भक्तिका अंग कहते हैं। जिस कर्मका फल स्वयं भोग किया जाँय, उसे 'कर्म' कहते हैं और जो कर्म सायुज्य मुक्तिको लक्ष्य कर किया जाता है उसे 'ब्रह्म-ज्ञान' कहते हैं। अतएव श्रीरूप गोस्वामीने भक्तिका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

अन्याभिलाषिता-शून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥
(भक्तिरसामृतसिन्धु)

वैध साधन-भक्ति और रागानुगा भक्तिके लक्षण

शास्त्रकी विधियोंके अधीन रहकर भक्तिके अंगों का पालन करनेका नाम 'वैध-साधन भक्ति' है। और कृष्णके अनुरागके वशवर्त्ती होकर जो सब सेवा-कार्य किया जाता है, उसे 'राग भक्ति' कहते हैं। कृष्णके प्रति व्रज-वासियोंकी भक्ति 'रागात्मिका भक्ति' है। भक्ति पर्वमें व्रजवासियोंका अनुकरण ही 'रागानुगा भक्ति' है। वैधी भक्ति जब श्रद्धासे आरंभ कर रति तक पहुँचती है, तब वह रागानुगा भक्तिके साथ एक हो जाती है। रागानुगा भक्ति अत्यन्त बलवान होती है। यही नवम मूल अर्थात् ८ वाँ प्रमेय है।

नवम प्रमेय अथवा दसवाँ मूल—कृष्ण-प्रेम ही प्रयोजन है

आम्नाय-वाणियोंके अनुसार प्रेम ही प्रयोजन तत्त्व है। साधन भक्तिसे लेकर प्रेम प्राप्ति तक भिन्न-भिन्न क्रम हैं। जन्म-जन्मान्तरोंकी सुकृतिसे सौभाग्य-वश बद्ध जीवमें श्रद्धाका उदय होता है। श्रद्धालु जीव साधु-संग करता है। सत्संगसे श्रवण-कीर्तन आदि साधन-भक्तिका आचरण करता है। धीरे-धीरे साधनके प्रभावसे उसके सारे अनर्थ दूर हो जाते हैं, तब पूर्व श्रद्धा 'निष्ठा' बन जाती है। निष्ठा दृढ़ होनेपर 'रुचि' होती है। रुचिसे आसक्ति आसक्तिसे प्रीतिका अंकुर उत्पन्न होता है। यही रति (प्रीति-अंकुर) गाढ़ा होने पर प्रेम होता है। प्रेम ही जीवमात्रका चरम प्रयोजन है।

श्रीमन्महाप्रभुकी इस दसमूल शिक्षाके प्रति जिनको संदेह होता है, उनका भजन-साधन निरर्थक हो जाता है। संशयसे भजन विकृत हो जाता है। भजन विकृत होनेसे जीवका सर्वनाश हो जाता है। अतः जो लोग विशुद्ध रूपमें भजन करना चाहते हैं, उन्हें सुदृढ़ 'निश्चय' के साथ भजन करना चाहिए।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

गीताकी वाणी

चौदहवाँ अध्याय

तेरहवें अध्यायमें भगवान्‌ने प्रकृति, पुरुष और परमात्माका स्वरूप निर्णय किया है तथा प्रकृतिके अन्तर्गत गुणोंके संगको ही बन्धनका कारण बतलाया है। प्रस्तुत अध्यायमें उन गुणोंका विशेष रूपमें परिचय देनेके लिये समस्त ज्ञानोंसे उत्तम ज्ञानकी बात बतला रहे हैं, जिसको जानकर सनकादि मुनि परासिद्धि अर्थात् भक्ति प्राप्त कर चुके हैं। उस ज्ञान का आश्रय करनेसे जीव भगवत् साधर्म्यको प्राप्त होता है अर्थात् जीवमें निष्पाप, अशोक आदि आठ गुणोंका प्रादुर्भाव होता है। ऐसे जीव न तो सृष्टि-कालमें उत्पन्न होते हैं और न प्रलयकालमें व्यथित ही होते हैं।

यहाँ पर जड़ा प्रकृतिको महद् ब्रह्म कहा गया है। प्रकृति योनि-स्वरूप है अर्थात् वह गर्भ धारण करती है और भगवान् उसमें जीवरूप वीर्यको स्थापन करते हैं। उसीसे समस्त भूत उत्पन्न होते हैं। देव-तिर्यक् आदि योनियोंमें जो मूर्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उन सबकी योनि महद्ब्रह्म (प्रकृति) है। और परमेश्वर बीज प्रदान करनेवाले पिता हैं।

प्रकृतिसे सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण उत्पन्न होते हैं। इन्हीं गुणोंके द्वारा प्रकृति जीवको बाँधती है। इन गुणोंमें सत्त्वगुण औरोंकी अपेक्षा कुछ अधिक निर्मल, प्रकाशकारी और सुखदायी होने के कारण जीवको ज्ञान और सुखके संगसे बाँधता है। रजोगुण स्त्री-पुरुषके परस्पर अभिलाषात्मक होता है। यह विषयोंके प्रति भोग-लिप्साको उत्पन्न कर जीवको भोगात्मक कर्मके संगसे बाँधता है। और तमोगुण समस्त जीवोंको मोहित करनेवाला तथा अज्ञानको उत्पन्न करनेवाला होता है। वह वस्तुको आच्छादित कर प्रमाद, आलस्य और निद्राके द्वारा जीवको बाँधता है। एक ही शरीरमें एक ही समय समस्त गुण समानरूपसे प्रबल नहीं होते। जहाँ सत्त्व गुण प्रबल होता है, वहाँ रज और तम दबे रहते हैं; जहाँ रजोगुण प्रबल होता है, वहाँ सत्त्व और रज दबे रहते हैं तथा जहाँ पर तमः प्रबल होता है, वहाँ सत्त्व और रज दबे रहते हैं। प्रबल गुण ही जीवको अपने अधीन कर बाँधता है।

पूर्वजन्मके कर्मफलानुसार सत्त्वगुणकी वृद्धि होने पर समस्त इन्द्रियद्वारोंमें ज्ञानरूप प्रकाश बढ़ जाता है। रजोगुणकी वृद्धि होनेसे लोभ प्रवृत्ति, गृह-निर्माण आदि कर्मारंभ, विषय भोगकी लिप्सा और भोगमें अतृप्ति आदि बढ़ जाती हैं। तमोगुणके बढ़ने पर अप्रकाश (अज्ञान) अप्रवृत्ति (विषय-ग्रहण करनेमें चेष्टा-शून्यता), प्रमाद और मोह—यह सब बढ़ जाता है।

सत्त्वगुणसे युक्त अवस्थामें मृत्यु होनेपर पुरुष हिरण्यगर्भादि लोकोंमें सुख भोग करता है, रजोगुण में मृत्यु होनेपर कर्मासक्त पुरुषोंके कुलमें जन्म लेता है, तथा तमोगुणमें मरा हुआ पुरुष कुकुर और शूकर आदि मूढ़ योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है।

सात्त्विक कर्मका फल—निर्मल होता है, रजोगुण का—दुख और तमोगुणका फल अज्ञान होता है।

सत्त्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ और तमोगुणसे अज्ञान, प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं।

सत्त्वगुणमें स्थित पुरुष ऊपरको (सत्यलोक तक) जाते हैं, राजसिक व्यक्ति मनुष्यलोकको प्राप्त होते हैं तथा तामसिक व्यक्ति अधःपतित होकर नरकमें गमन करते हैं।

जब द्रष्टा पुरुष गुणोंसे भिन्न दूसरोंको कर्त्ता नहीं देखता और गुणोंसे अतीत आत्माको अकर्ता जान लेता है, तब वह गुणातीत होकर शुद्धभक्ति प्राप्त कर सकता है। देहसे युक्त जीव निर्गुण निष्ठा द्वारा प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणोंको लाँघ कर जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि दुखोंसे मुक्त होकर निर्गुण प्रेमरूप अमृतका आस्वादन करता है।

इस रहस्ययुक्त बात को सुनकर अर्जुनने भगवान्से पूछा—'प्रभो! इन तीनों गुणोंसे अतीत पुरुषका क्या लक्षण है? उनका आचरण कैसा होता है? तथा किस उपायसे इन तीनों गुणोंसे अतीत हुआ जा सकता है?

भगवान् उत्तर देते हैं—'द्वेष-भावना तथा कामना-वासनासे रहित होना अर्थात् निर्विशेष ज्ञानियोंके विषयोंके प्रति द्वेष तथा कर्मियोंके विषयों के प्रति भोग की स्पृहा—इन दोनोंसे रहित होना ही त्रिगुणातीत पुरुषका लक्षण है। जब तक शरीर है, तब तक तीनों गुणोंमें से किसी न किसी एक गुण का कार्य अर्थात् प्रकाश, प्रवृत्ति अथवा मोह अवश्य ही वर्त्तमान रहेगा। किन्तु त्रिगुणातीत पुरुष कामना वासना द्वारा उनमें प्रवृत होने अथवा द्वेष द्वारा उनसे निवृत होनेकी चेष्टा नहीं करता। शरीर, मन और व्यवहारमें गुण अपने आप ही कार्य करते हैं, त्रिगुणातीत पुरुष गुणोंको गुणोंमें कार्य करते देख कर अपनेको उनसे पृथक् चैतन्य-स्वरूप समझ कर उदासीनकी भाँति रहता है। वह निरंतर आत्म-

भावमें स्थित, दुःख-सुखमें सम, मिट्टी, पत्थर और स्वर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय और अप्रिय-को एक सा माननेवाला और निन्दा स्तुतिमें सम रहता है। मान-अपमान और शत्रु-मित्रमें सम तथा सम्पूर्ण आरंभोंमें कर्त्तापनके अभिमानसे रहित होता है। ये सारे गुण गौण हैं; गुणातीत पुरुषका मुख्य गुण हैं—कृष्णके प्रति अनन्य भक्ति। इसी मुख्य गुणकी सहायतासे जीव इन तीनों गुणों को लाँघकर ब्रह्मभूत अवस्थाको प्राप्त करता है।

जीवकी समस्त साधनाओंका फल है—ब्रह्म सम्पतिको प्राप्त होना। ज्ञान-साधनाके द्वारा जीव क्रमशः उच्चावस्था लाभ करते-करते ब्रह्मधामको प्राप्त होता है। वहाँ उसमें जड़ीय विशेषको (गुणको) त्याग करनेका धर्म अर्थात् निर्विशेष भाव उत्पन्न होता है। सौभग्यवश वह भाव दूर होनेपर चित् विशेष भाव उदित होता है। इसी समय जीव भक्ति का अधिकारी होता है। दुर्भाग्यवश यदि निर्विशेष भाव दूर न हुआ और हृदयमें मुक्तिकी कामना हो हो गयी तो भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। वास्तवमें निर्गुण सविशेष तत्त्व ही भगवान् हैं, वे ही ब्रह्मकी प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हैं। अमृतत्व अव्ययत्व, नित्यत्व, प्रेम और ऐकान्तिक सुख-स्वरूप ब्रजरस—ये समस्त निर्गुण सविशेष तत्त्वरूप श्रीकृष्णको आश्रय कर वर्त्तमान रहते हैं

जीव स्वरूपतः निर्गुण है, परन्तु जड़ा प्रकृतिके संगसे सगुण जैसा हुआ त्रिगुणसे बँधा हुआ है और प्रकृतिके संसर्गसे ही उसमें असत् तृष्णाका उदय होता है सत्संगमें श्रवण कीर्त्तन आदिके द्वारा यह असत् तृष्णा दूर होती है तथा साधुसेवा द्वारा भक्तियोगमें प्रवेश होता है, इसे ही नैर्गुण्य-भाव कहते हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

श्रीरूप गोस्वामी

यौ कलि रूप शरीर न धारत।
तौ भूतल ब्रज, प्रेम महानिधि, कौन कपाट उघारत॥
को सब त्यजि, भजि श्रीवृन्दावन, को सब ग्रन्थ विचारत।
मिश्रित क्षीर, नीर बिनु हंसन, कौन पृथक् करि पारत॥
को जानत, मथुरा वृन्दावन, को जानत ब्रज रीति।
को जानत, राधा माधव रति, को जानत सब नीत॥
याके चरन, प्रसाद सकल जन, गाई गाई सुख पावत।
कीरति विमल, सुनत जन माधो, हृदे आनन्द बढ़ावत॥

— भक्तिरत्नाकरसे

श्रीश्रीबलदेव प्रभुका आविर्भाव

श्रीश्रीझूलन-पूर्णिमा बीतनेके साथ-ही-साथ श्रीबलदेवकी आविर्भाव-तिथि हमारे हृदयमें बलका संचार कर रही है। झूलन-यात्राकी समाप्तिसे श्रीश्रीगान्धार्विका-गिरिधारीके मिलन-प्रयासी सेवकोंके हृदयमें अप्राकृत विरहका भाव उमड़ने लगता है। ठीक उसी समय श्रीश्रीबलदाऊजी आविर्भूत होकर विरही भक्तोंके हृदयमें बलका संचार करते हैं। बलदेवकी आविर्भाव तिथिमें भक्तजन "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः" उपनिषदके इस मंत्रका उच्चारण कर बलदेवाविर्भावको आदरपूर्वक आह्वान करते हैं। इस आनन्दोत्सवके उपलक्ष्यमें अनन्य सेवकजन आनन्दमें मग्न होकर आहार-निद्राका परित्याग कर श्रीश्रीबलदेवका विजय-उत्सव मनाया करते हैं। श्रीश्रीबलदेवकी आविर्भाव-पूर्णिमा-तिथि गौड़ीय-वैष्णवोंकी सर्वोत्तमा उपास्या तिथि है।

श्रीबलदेव भी श्रीकृष्णकी तरह 'वासुदेव' और 'देवकीनन्दन' हैं। जिस प्रकार वासुदेव कहनेसे वसुदेवके अपत्य अर्थात् पुत्र 'कृष्ण' का बोध होता है, उसी प्रकार वसुदेवके अपत्य अर्थमें 'बलदेव' का भी बोध होता है। अतएव वासुदेव कहनेसे कृष्ण और बलदेव दोनों ही समझे जाते हैं। उसी प्रकार देवकीनन्दन कहनेसे भी दोनोंका ही बोध होता है। जैसे कृष्ण अवतारी हैं, उसी प्रकार बलदेव भी अवतारी हैं। यद्यपि श्रीजयदेव कविने 'दशावतार स्तोत्र' में बलदेवको आठवें अवतारके रूपमें निर्दिष्ट किया है, तथापि दूसरे-दूसरे समस्त अवतार श्रीबलदेवजीसे ही आविर्भूत हुए हैं। इसीलिए बलदेव मूल-संकर्षण हैं। सुतरां बलदेव भी कृष्णकी तरह अवतारी हैं। आचार्योंने जिस प्रकार कृष्णको परमेश्वर-तत्त्व निरूपण कर उनको सर्वसद्गुणोंकी समष्टिके रूपमें लक्ष्य किया है, उसी प्रकार बलदेव भी सर्वसद्गुणोंकी समष्टि-स्वरूप हैं। कृष्ण जिस प्रकार दुष्टोंके दमनकारी और साधु-पुरुषोंके पालक हैं, बलदेव भी उसी प्रकार दुष्टोंके विनाशक और संतोंके रक्षक हैं। यद्यपि सूक्ष्म-विचार द्वारा देखनेसे तथा क्रियाओंके प्रति लक्ष्य करनेसे कृष्ण और बलराम एक ही प्रतीत होते हैं, तथापि तटस्थ होकर विचार करनेसे दोनोंमें कुछ तारतम्य दीख पड़ता है। यही ईश्वरके ईश्वरत्वका तारतम्यमूलक लीलावैशिष्ट्य अथवा लीला-पार्थक्य है।

श्रीबलदेवकी आविर्भाव तिथिमें हम गौड़ीय वैष्णवजन श्रीमन्मध्वाचार्यका आनुगत्य स्वीकार कर श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुकी लीलाकथाका सर्वतोभावेन स्मरण करते हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु बलदेवाभिन्न-विग्रह हैं। 'बलदेवाभिन्न' कहनेसे हृदयमें एक प्रकारके पार्थक्यकी मैल आक्रमण कर सकती है। इसीलिए आचार्योंने नित्यानन्दप्रभुको 'साक्षात् बलदेव' कहा है। श्रीनित्यानन्द प्रभु साक्षात बलदेव होनेपर भी हलधर नहीं हैं। यही ईश्वरत्वके ऐक्यमें वैशिष्ट्य-मूलक लीलागत भेद है। यह भेदाभेद-तत्त्व विशुद्ध हृदयमें पूर्णरूपसे प्रकाशित हुआ करता है। सुन्दरानन्दके जैसे अशुद्ध हृदयमें यही 'अचिन्त्य अद्वैतवाद' के रूपमें परिणत हुआ है। प्रसंगवश हम श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीका निम्नलिखित श्लोक उद्धृत कर रहे हैं—

वन्देऽनन्ताद्भुतैश्वर्यं श्रीनित्यानन्दमीश्वरम्।
यस्येच्छया तत्स्वरूपमज्ञे नापि निरूप्यते॥

(चै० च० आ० ५।१)

श्रीश्रीबलदेव जयन्तीका उपवास

कुछ लोग श्रीबलदेवकी आविर्भाव-तिथिको जयन्ती स्वीकार करना नहीं चाहते। हमलोग ऐसे विचारको भ्रान्तिमूलक मानते हैं। श्रीबलदेवको मूलसंकर्षणके रूपमें समस्त अवतारोंका आश्रय-स्थल अर्थात् उनको विषय-विग्रह-स्वरूप स्वीकार करनेसे उनकी आविर्भाव

तिथि न माननेका कोई युक्ति-संगत कारण नहीं है। श्रीकृष्ण-जयन्ती, श्रीगौर-जयन्ती, श्रीनृसिंह-जयन्ती, श्रीनित्यानन्द-जयन्ती आदि तिथियोंमें जिस प्रकार निर्जला उपवास रह कर आविर्भाव मुहूर्त्तके बाद शुद्ध-वैष्णववृन्द अनुकल्प (असमर्थ व्यक्तियोंके लिये फल-मूल और दुग्ध आदि) ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार श्रीबलदेवकी आविर्भाव-तिथिका पालन करना भी नितान्त कर्तव्य है। ऐसा नहीं करनेसे दोष लगता है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठोंमें विगत २५ श्रावण, १० अगस्त, शनिवारको शाम तक निर्जला उपवास रखकर श्रीबलदेवका अर्चन-पूजन करके कीर्त्तन-महोत्सवके उपरान्त अनुकल्प (असमर्थ के लिये) स्वीकार किया गया है तथा दूसरे दिन रविवारको सवेरे ६-३३ मिनटके पूर्व हरि-गुरु-वैष्णवों की सेवाके पश्चात् पारण किया गया है।

श्रीश्रीव्रजमण्डल परिक्रमाका विराट आयोजन

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ,
कंसटीला, पो० मथुरा (मथुरा)
१७ अगस्त १९५७

सादर संभाषणपूर्वक निवेदन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने इस वर्ष श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उर्जव्रत (कार्तिकव्रत) के उपलक्ष्यमें श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाका विराट आयोजन किया है। बंगाल और बिहार आदि पूर्वी-प्रदेशोंके यात्रियोंकी सुविधाके लिये आगामी २२ आश्विन, ९ अक्टूबर, बुधवारको हावड़ा स्टेशनसे ८ बजे रातमें एक रिजर्व ट्रेन छूटेगी, जो रास्तेमें गया, काशी, प्रयाग आदि प्रसिद्ध-प्रसिद्ध तीर्थस्थानोंका दर्शन कराती हुई मथुरा पहुँचेगी। एक महीने तक प्रतिदिन श्रीमद्भागवतके प्रवचन, संकीर्त्तन, धर्मसम्बन्धी भाषण, श्रीविग्रह-सेवा-पूजा, धामपरिक्रमा आदि शुद्ध भक्तिके विविध अंगोंके पालनकी सुन्दर व्यवस्था है।

व्रजमण्डलकी परिक्रमा करके श्रीश्रीद्वारका धामकी परिक्रमाकी भी व्यवस्था है।

हम धर्मप्राण सज्जनोंसे इस अपूर्व सुयोगको ग्रहण करनेके लिये अनुरोध करते हैं। विशेष जानकारी के लिये "संपादक—श्रीभागवत पत्रिका, मथुरा" अथवा "त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराज जी, श्रीउद्धारण गौड़ीयमठ, पो० चुचुड़ा (हुगली) के साथ पत्र व्यवहार करें।

निवेदक:—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभ्यवृन्द

अचिन्त्यभेदाभेद

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ३, पृष्ठ ६६ से आगे]

साहा बाबूद्वारा गुरुत्यागके सम्बन्धमें हम उपयुक्त स्थान पर आलोचना करेंगे। यथार्थ गुरुसेवक वे हैं, जो भक्तिराज्यमें विशेष प्रसिद्ध हैं। धर्म-जगत्में आज भी उस विचारकी—जो गुरुदेवके मतका खण्डन करे अथवा उसे ध्वंस करे—कतई भी मान्यता नहीं है। हरिदास बाबाजीकी सेवा या वासुदेव (पुरी गोस्वामी) के असामयिक अवैध विवाहकी सेवा अर्थात् अनुमोदन करना कोई भी धर्म-सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करेगी। यदि धर्म-जगत भी ऐसे-ऐसे घृणित आचरणोंका अनुमोदन करने लगे, तब अधर्म, अनाचार, पाप और अवैध व्यवस्था किसे कहा जाय ? हिरण्यकशिपु, रावण आदि असुरों में पाण्डित्यका कोई अभाव न था। अपने बड़े भाई हिरण्याक्षकी मृत्यु होनेपर उसकी विधवा स्त्रीको सान्त्वना देनेके लिये हिरण्यकशिपुने बड़े ही पाण्डित्यपूर्ण और गंभीर तत्त्वोंका उसे श्रवण कराया था। श्रीमद्भागवतका उक्त प्रसंग पढ़नेसे हिरण्यकशिपुके विराट पाण्डित्यका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। 'लंकावतार-सूत्र' में तथागत बुद्धके साथ दसानन रावणका जो तात्त्विक-संवाद वर्णन किया गया है, उसे पढ़ कर अद्वैतवादी मुग्ध हो पड़ते हैं और उससे रावणके प्रकाण्ड पाण्डित्यका परिचय मिलता है। तब क्या आचरणहीन पाण्डित्यको ही भक्ति माना जायगा ? अथवा नास्तिक चार्वाककी तरह केवल मस्तिष्कके व्यायाम द्वारा कुछ युक्ति-और तर्कोंकी सृष्टि करनेसे ही क्या भक्ति हो जायगी ? शैतान भी शास्त्रोंका प्रमाण उद्धार करते हैं। तो क्या इसीलिये उनके वाद-विवाद ही साधकोंके ग्रहण योग्य हैं ? शास्त्रकारोंने आचरण-रहित प्रचारका तनिक भी मूल्य नहीं दिया है। साहा बाबूको श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीसनातन गोस्वामीकी शिक्षा अनुसरण करनेके लिए अनुरोध करता हूँ—

आपने आचारे केह, ना करे प्रचार।
प्रचार करेन केह, ना करेन आचार॥
'आचार', 'प्रचार',–नामेर करह 'दुइ' कार्य।
तुमि—सर्वगुरु, तुमि—जगतेर आर्य॥
(चै० च० अ० ४।१०२-१०३)

सुतरां दीक्षा और संस्कारादि शिष्टाचारोंका परित्याग कर अनार्य होनेसे लाभ ही क्या है ? 'गुरु छाड़ि गौराङ्ग भजे, से पापी नरके मजे।'—क्या विद्याविनोद महाशय इसे भूल गये हैं ?

प्रकाशकका मङ्गलाचरण

यह ध्रुव सत्य है कि विद्याविनोद महाशयका "श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः"—वाक्य मङ्गलाचरणके रूपमें व्यवहृत नहीं हुआ है। इसे मैंने पहले ही प्रमाणित कर दिया है। फिर भी प्रसङ्ग-वश इस विषयमें और भी दो एक बातें निवेदन करूँगा। उन्होंने गुरुसेवारूप आधारशिलासे युक्त भगवद्भक्तिका विनाश करनेके लिये त्रिशूल-स्वरूप जिन तीन ग्रन्थोंकी रचना की है, उनमें 'अचिन्त्यभेदाभेदवाद' के अतिरिक्त अन्य दो ग्रन्थोंके * प्रारम्भमें ग्रन्थ-सिरनामाके ऊपर 'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः'—वाक्य लिखा रहने पर भी ग्रन्थका आरंभ करनेके पहले मङ्गलाचरण किया है। इससे पता चलता है कि उन्होंने 'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः' अथवा 'श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दौ जयतः' इत्यादि वाक्योंको मङ्गलाचरणके

* 'गौड़ीय-दर्शनेर इतिहास ओ वैशिष्ट्य' और 'गोड़ीयार तीन ठाकुर'—४६७ गौराब्द, १३६० बंगाब्द सन् १९५३ ई० में रजिस्टर्ड गौड़ीय मिशन द्वारा प्रकाशित।

रूपमें ग्रहण नहीं किया है। यदि इन वाक्योंको मंगलाचरण मानते, तो अन्य दो ग्रन्थोंमें वे पृथक रूपमें मंगलाचरण नहीं लिखते। सभी शास्त्रकारोंने तथा महाजनोंने शिष्टाचारकी रक्षाके लिए सर्वत्र ही मंगलाचरणकी नीति अपनायी है। यहाँ तक कि ग्रन्थ प्रकाशक भी प्रकाशन कार्यमें विघ्नोंसे बचनेके लिये मंगलाचरण किया करते हैं। ग्रन्थके सिरनामाके ऊपर अनेक स्थलोंमें ऐसे-ऐसे वाक्य देख पड़ते हैं। इन्हें सर्वत्रही प्रकाशकका मंगलाचरण माना जाता है, ग्रन्थकारका नहीं। 'श्रीगणेशाय नमः, 'श्रीसीतारामाभ्यां नमः', 'श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः', 'श्रीहनुमते नमः', श्रीशिवाय नमः', श्रीसरस्वत्यै नमः', 'श्रीनारायणाय नमः', 'श्रीदुर्गायै नमः', 'श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः', एवं वर्त्तमान आलोच्य ग्रन्थमें 'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः' और 'श्रीश्रीगौर-नित्यानन्दौ जयतः' आदि वाक्य प्रकाशकके ही मंगलाचरणके रूपमें देखे जाते हैं। यदि कोई महापुरुष उक्त वाक्यों को मंगलाचरणके रूपमें व्यवहार करें, तो इसमें कोई दोषकी बात नहीं है। यद्यपि नास्तिक-धर्म-प्रचारकोंने उक्त वाक्योंको मंगलाचरण स्वीकार नहीं किया है, तथापि वे वाक्य मंगलाचरणसे बहिर्भूत नहीं हैं। परन्तु यह मंगलाचरण प्रकाशकोंका है, ग्रन्थकारोंका नहीं।

'अचिन्त्यभेदाभेदवाद'—ग्रन्थ गौड़ीय मिशन द्वारा प्रकाशित हुआ है। सुतरां गौड़ीय मिशनने यदि 'श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः' मंत्र उच्चारण कर विद्याविनोद महाशयका ग्रन्थ प्रकाशित किया है, तब यह मंत्र गौड़ीय मिशनका ही मंगलाचरण है। यों तो वर्त्तमान (रजिस्टर्ड) गौड़ीय मिशनको भी उक्त मंत्र उच्चारण करनेका अधिकार है या नहीं—इस विषय में काफी मतभेद है, क्योंकि पहलेके गौड़ीय मिशनके प्रतिष्ठाता अथवा श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गके साथ आधुनिक गौड़ीय मिशनका कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्याविनोद द्वारा रचित गुरुद्रोहितामूलक ग्रन्थोंको प्रकाशित करना ही 'श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः' का विरुद्धाचरण करना है। जैसा भी हो, प्रकाशकके मंगलाचरणको ग्रन्थकर्त्ताका मंगलाचरण कदापि नहीं माना जा सकता।

श्रीमद्भागवतके बहुतसे संस्करणोंमें [क] ग्रन्थारम्भके पहले 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र देखा जाता है। और बहुतसे ऐसे भी संस्करण हैं, जिनमें उक्त मंत्र नहीं है। जैसे—(१) श्रीअनन्त वासुदेव ब्रह्मचारी द्वारा ४३१ श्रीचैतन्यप्रकटातीताब्दमें गौड़ीय भाष्यके साथ प्रकाशित संस्करण (गौड़ीय मठका संस्करण) एवं (२) ज्येष्ठ १२८८ बंगाब्दमें १६४ नं० मानिकतला स्ट्रीट, कलकत्तासे श्रीउपेन्द्रचन्द्र मित्र द्वारा सम्पादित और श्रीभगवतीचरण राय द्वारा प्रकाशित संस्करण।

आजकल श्रीमद्भागवतके जितने भी संस्करण उपलब्ध होते हैं, उनमें शेषोक्त श्रीउपेन्द्रचन्द्र मित्र महाशय द्वारा सम्पादित श्रीधरी टीकासे युक्त संस्करण ही सबसे प्राचीन संस्करण है। अतः 'श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः' अथवा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' आदि मंत्र-समूह ग्रन्थकर्त्ताके मंगलाचरण जैसे प्रतीत नहीं होते। श्रीमद्भागवतके उक्त प्राचीनतम संस्करणमें 'जन्माद्यस्य' श्लोकको व्यासदेवका मंगलाचरण माना गया है और उस श्लोकके ऊपर मित्र महोदयने 'श्रीभागवतकृतो मंगलाचरणम्' शीर्षक देकर विषयका निरूपण किया है। उन्होंने उक्त श्लोक को श्रीमद्भागवत संहिताकी श्लोक-संख्यामें अन्तर्भूक्त न कर पृथक् मंगलाचरणके रूपमें माना है। एक प्रधान मायावादी होनेपर भी मित्र महोदयने यह

[क] (१) ३७ नं० बलराम वसु घाट रोड, भवानीपुर कलकत्तासे श्रीखगेन्द्रनाथ शास्त्री द्वारा प्रकाशित संस्करण, (२) सं० १९६० में श्रीनित्यस्वरूप ब्रह्मचारी द्वारा सम्पादित और राजर्षि बनमाली रायबहादुर द्वारा प्रकाशित संस्करण (३) १३०४ बंगाब्दमें श्रीरामनरायण विद्यारत्न महोदय द्वारा प्रकाशित संस्करण, (४) १३३४ बंगाब्दमें श्रीपञ्चानन तर्करत्न महाशय द्वारा प्रकाशित संस्करण।

स्वीकार किया है कि उक्त श्लोकके 'सत्यं परं धीमहि'-वाक्य द्वारा व्यासदेवने मंगलाचरण किया है। अथच वे स्वयं नास्तिक मायावादी होनेके कारण किसी प्रकारका मंगलाचरण करना आवश्यक नहीं समझते। उन्होंने श्रीमद्भागवतको एक प्रधान अद्वैतवादी ग्रन्थ माना है। तथा उनका यह मत है कि पूज्यपाद श्रीधर स्वामी भी एक प्रधान मायावादी आचार्य हैं तथा उन्होंने मायावादकी पुष्टिके लिये ही श्रीमद्भागवत पर 'भावार्थ-दीपका' नामक टीका लिखी है। सुन्दरानन्द विद्याविनोदने 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' में इसी मतकी प्रतिध्वनि की है।

पूर्वोक्त गौड़ीय मठसे प्रकाशित श्रीमद्भागवतमें 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—मंत्रका उल्लेख न रहने पर भी ग्रन्थके सिरनामाके ऊपरी भागमें 'श्रीश्री गुरु-गौरांगौ जयतः' वाक्य मुद्रित है। यह वाक्य ग्रन्थकर्त्ताका नहीं, बल्कि प्रकाशकका मंगलाचरण है—यह मैं पहले ही प्रमाणित कर चुका हूँ। तथापि जगद् गुरु ॐ विष्णुपाद परमहंसकुल चूड़ामणि श्रीमद्भक्ति सिद्धान्तसरस्वती गोस्वामी ठाकुरने श्रीमद्भागवतके अपने गौड़ीय भाष्यमें शिष्टाचारकी रक्षा के लिये सबसे पहले श्रीगुरुपरम्पराके* गान के रूपमें मंगलाचरण किया है। श्रीमद्भागवतके प्रत्येक टीकाकारने तथा प्रत्येक गोस्वामीने उक्त श्लोकको श्रीव्यासकृत मंगलाचरणके रूपमें ही ग्रहण किया है। यहाँ तक कि उन्होंने उक्त श्लोककी अपनी-अपनी टीकाओं में अपने-अपने इष्टदेवको प्रणाम कर उनका जयगान भी किया है।

---

* रुक्मवर्ण गौरहरि, नित्य दुइ तनु धरि, राधाकृष्ण आनन्द चिन्मय।
विभाव सामग्री-नाम, विषय आश्रय धाम, आलम्बन नामे परिचय॥
नित्य उद्दीपनयोगे, उपादेय रस-भोगे, चिद्विलासे मत्त निरन्तर।
अप्राकृत रति जुष्ट, सदा नामरसे पुष्ट, गौर भक्त सब परिकर॥
परिकर परिचय, सम्बन्ध स्थापित हय, ताहा लागि परम्परा गान।
अन्वय निर्देश करि, गुरुगण पद धरि, याहे हरिजन अभिमान॥
कृष्ण-हइते चतुर्मुख, हय कृष्णसेवन्मुख, ब्रह्मा हइते नारदेर मति।
नारद हइते व्यास, मध्व कहे व्यासदास, पूर्णप्रज्ञ पद्मनाभ-गति॥
नृहरि माधवबंशे, अक्षोभ्य परमहंसे, शिष्य बलि अङ्गीकार करे।
अक्षोभ्येर शिष्य जयतीर्थ नामे परिचय, ताँर दास्ये ज्ञानासिन्धु तरे॥
ताँहा हैते दयानिधि, ताँर दास विद्यानिधि, राजेन्द्र हइल ताँहा हैते।
ताँहर किङ्कर जय-धर्म नामे परिचय, परम्परा जान भालमते॥
जयधर्म-दास्ये ख्याति, श्रीपुरुषोत्तम यति, ता हते ब्रह्मण्यतीर्थ सूरि।
व्यासतीर्थ ताँर दास, लक्ष्मीपति व्यासदास ताँहा हते माधवेन्द्रपुरी॥
माधवेन्द्र पुरीवर, शिष्यवर श्रीईश्वर, नित्यानन्द श्रीअद्वैतविभु।
ईश्वरपुरीके धन्य, करिलेन श्रीचैतन्य, जगद्गुरु गौर महाप्रभु॥
महाप्रभु श्रीचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य, रूपानुगजनेर जीवन।
विश्वम्भर प्रियङ्कर, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीगोस्वामी रूप-सनातन॥
रूपप्रिय महाजन, जीव रघुनाथ हन, ताँर प्रिय कवि कृष्णदास।
कृष्णदास प्रियवर, नरोत्तम सेवापर, याँर पदे विश्वनाथ आश॥
विश्वनाथ भक्तसाथ, बलदेव जगन्नाथ, ताँर प्रिय श्रीभक्तिविनोद।
महाभागवतवर, श्रीगौरकिशोरवर, हरि-भजनेते याँर मोद॥

वेद और उपनिषदोंमें मंगलाचरण

हम अपौरुषेय वेद और प्राचीनतम पौरुषेय शास्त्रोंमें भी मंगलाचरण देख पाते हैं। ऋक, यजुः, साम और अथर्व—इन चारों वेदोंमें ऋग्वेद ही सब से प्राचीन और आदि वेद है। इस वेदके प्रारंभमें शिष्टाचार और मंगलाचरणकी शिक्षाके रूपमें प्रथम श्लोकमें ही हम देख पाते हैं—

'ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारं रत्नधातमम्।' (ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १, १ मा ऋक्)*

अर्थात् 'मैं अग्निदेवताका स्तव करता हूँ। वे यज्ञके पुरोहित हैं, ऋत्विक् हैं, होता हैं और श्रेष्ठरत्न के अधिकारी हैं।' सायनाचार्यने इस मंत्रके भाष्यमें लिखा है--'अग्नि नामकं देवमीले! स्तौमि। ईड स्तौति। × × × इ-कारस्य ल-कारः × × प्राप्तः।'

अतः स्वयं ऋग्वेदनेभी 'ॐ' शब्दका उच्चारण कर अग्निदेवताकी स्तुतिके व्याजसे मंगलाचरण किया है--ऐसा समझना होगा। इसका अर्थ यह नहीं कि स्वयं वेद भी मंगलाचरणके द्वारा अपना अमंगल दूर करना चाहते हैं; बल्कि भगवान्ने जीवों की शिक्षाके लिए ही ऐसा आचरण दिखलाया है। जो लोग इस वैदिक पद्धतिका अवलम्बन नहीं करते--शिष्टाचारकी रक्षाके लिये मंगलाचरण करना आवश्यक नहीं समझते, वे अवैदिक बौद्धोंकी श्रेणीमें अन्तर्भुक्त हैं। वेदके उक्त मंत्रसे हम ऐसी ही प्रेरणा और निर्देश लक्ष्य करते हैं। केवल वेदोंमें ही नहीं, उपनिषदोंमें भी इस पद्धतिका कहीं भी उल्लङ्घन नहीं किया गया है। ऋषियोंने वेदोंका अनुशीलन कर अपने अप्राकृत अनुभवको उपनिषदोंके रूपमें प्रकाश किया है। हम इन उपनिषदोंके भी आदिमें मंगलाचरण देख पाते हैं। ईशोपनिषत् और बृहदारण्यकमें मंगलाचरणके रूपमें एक ही तरहका शान्ति-पाठ लक्ष्य किया जाता है--

"ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥"

मुण्डकोपनिषत्, प्रश्नोपनिषत् और नृसिंहतापनी में मंगलाचरणरूप शान्ति-पाठ एक जैसा है--'ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम' इत्यादि। ऐतरेय, कौषीतकी और मुद्गल उपनिषदोंमें--'ॐ वाङ्मे मनसीति शान्तिः।' मन्त्र देखा जाता है। कठ और श्वेताश्वतर उपनिषदोंमें मंगलाचरणरूप शान्तिपाठ इस प्रकार है--'ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु × × ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥'

सूत्रकारोंका मंगलाचरण

भारतमें ६ दर्शन-शास्त्र हैं। इनमें विषयोंका वर्णन सूत्रोंमें किया गया है। न्याय दर्शनके सम्बन्धमें आगे विवेचन होगा। सांख्य, पातञ्जलि, वैशेषिक, पूर्व-मीमांसा, और उत्तर-मीमांसा—इन पाँचों दर्शनोंमें ही 'अथ' शब्दसे मंगलाचरण किया गया है। वेद और उपनिषद् आदिमें जिस प्रकार 'ॐ' शब्दसे मंगलाचरण किया गया है, उसी प्रकार सूत्रकारोंने भी केवल 'अथ' शब्द द्वारा ही मङ्गलाचरण किया है। सांख्य दर्शनमें कपिलका प्रथम सूत्र है--'अथ त्रिविधदुःखात्यन्त-निवृत्तिरत्यन्त-पुरुषार्थः।' इस सूत्रके 'अथ' शब्दसे मङ्गलाचरण ही लक्षित होता है। आचार्य विज्ञान भिक्षुने उक्त 'अथ' शब्दके भाष्यमें इस प्रकार लिखा है—" 'अथ' शब्दोऽयमुच्चारण-मात्रेण मङ्गलरूपः"। पतञ्जलि द्वारा रचित योगशास्त्रमें "अथयोगानुशानम्"—वाक्य देखा जाता है। (क्रमशः)

दुँहारा परमहंस, गौरांगेर निजवंश, तादेर चरणे मम गति।
आमि सेवा-उदासीन, नामेते त्रिदण्डी दीन, श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती॥

—(श्रीअनन्तवासुदेव-प्रकाशित गौड़ीय मठ संस्करण श्रीमद्भागवत)

* श्रीयुत दुर्गाचरण लाहिड़ी द्वारा सम्पादित ऋग्वेद संहिता पृष्ठ-५

जैवधर्म

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ३, संख्या ३, पृष्ठ ७२ से आगे]

गोराचाँद—'वैष्णव-शास्त्रोंमें भगवान्‌की विशुद्ध-चिन्मय-मूर्तिकी पूजाकी व्यवस्था है। उच्चश्रेणी के भक्तोंके लिये पार्थिव वस्तु अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि आदि भूतोंसे उत्पन्न वस्तुकी पूजा करनेका विधान नहीं है—

यस्यात्म-बुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः
यत्तीर्थ-बुद्धिः सलिले न कर्हिचिज् जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः। §

(श्रीमद्भा० १० । ८४ । १३)

'भूतेज्या यान्ति भूतानि' (गीता ९ । २५) इत्यादि सिद्धान्त वाणियोंसे भूत-पूजाकी अप्रतिष्ठा ही सूचित होती है। किन्तु इसमें एक विशेष बात है। मनुष्य ज्ञान और संस्कारके तारतम्यसे अधिकार-भेद लाभ करता है। जिन्होंने शुद्ध चिन्मय भावको समझ लिया है, केवल वे ही चिन्मय-विग्रहकी उपासना करनेमें समर्थ हो सकते हैं। इस विषयमें जो जितने ही नीचे हैं, वे उतने कम समझ सकते हैं। अत्यन्त निम्नाधिकारी व्यक्तिको चिन्मय-भावकी उपलब्धि नहीं होती। इसलिए ये लोग मनसे भी ईश्वरका ध्यान करने पर जड़ीय-मूर्तिकी ही कल्पना किया करते हैं। मृन्मयी-मूर्तिको ईश्वर मूर्ति समझना और मनके द्वारा जड़मयी मूर्तिका ध्यान करना एक ही बात है। अतएव उस अधिकारीके लिये प्रतिमाकी पूजा करना कल्याणजनक है। वास्तवमें प्रतिमा-पूजा न करने से साधारण जीवोंका अमंगल होता है। साधारण जीव जब ईश्वरके प्रति उन्मुख होता है, तब अपने सामने ईश्वरकी प्रतिमा न देखकर वह हताश हो पड़ता है।

जिन धर्मोंमें प्रतिमा-पूजा नहीं है, उस धर्मके निम्नाधिकारी व्यक्ति नितान्त विषयी और ईश्वर-विमुख होते हैं। अतएव मूर्तिपूजा मानव-धर्मकी आधार-शिला है। महाजनोंने विशुद्ध ज्ञान-योग द्वारा परमेश्वरकी जिस मूर्तिका दर्शन किया है, वे भक्ति द्वारा पवित्र हुए अपने चित्तमें उसी शुद्ध चिन्मय मूर्तिकी भावना करते हैं। भावना करते-करते जब भक्तका चित्त जगत्‌के प्रति प्रसारित होता है, तभी जड़ जगत्‌में उस चित्त-स्वरूपका प्रतिफलन अंकित होता है। भगवत् मूर्ति इसी प्रकार महापुरुष (महाजन) द्वारा प्रतिफलित होकर प्रतिमा हुई है। वही प्रतिमा उच्च अधिकारियोंके लिए सर्वदा चिन्मय-विग्रह है, मध्यमाधिकारीके लिए मनोमय विग्रह है तथा निम्नाधिकारीके लिये पहले-पहल जड़मय विग्रह होनेपर भी क्रमशः भाव द्वारा शोधित बुद्धि के ऊपर चिन्मय-विग्रहके रूपमें उदित होती है। अतएव समस्त अधिकारियोंके लिए श्रीविग्रहकी प्रतिमा भजनीय और पूजनीय है। कल्पित मूर्तिकी पूजाकी आवश्यकता नहीं, किन्तु नित्य मूर्तिकी प्रतिमा अतिशय मङ्गलमय होती है। वैष्णव सम्प्रदायोंमें इस प्रकार विभिन्न अधिकारियोंके लिये प्रतिमा-पूजा की व्यवस्था दी गयी है। इसमें तनिक भी दोष नहीं है। क्योंकि इसी व्यवस्थासे जीवोंका उत्तरोत्तर कल्याण होता है। श्रीमद्भा० (११ । १४ । २६) में कहते हैं—

यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्य-गाथा-श्रवणाभिधानैः।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जन-सम्प्रयुक्तम्॥(क)

§ श्रीभागवत पत्रिका वर्ष २, पृष्ठ ४६६ में द्रष्टव्य।

(क) उद्धवजी! मेरी परम पवित्र लीला-कथाके श्रवण-कीर्तनसे ज्यों-ज्यों चित्तका मैल धुलता जाता है, त्यों-त्यों उसे मेरे जड़ातीत चिन्मय सूक्ष्म-स्वरूपका दर्शन होने लगता है—जैसे अञ्जनके द्वारा नेत्रोंका दोष मिटने पर उनमें सूक्ष्म वस्तुओंको देखनेकी शक्ति आने लगती है।

जीवात्मा इस जगत्के जड़ीय मन द्वारा आवृत है। आत्मा अपनेको जाननेमें तथा परमात्माकी सेवा करनेमें समर्थ नहीं होती। श्रवण और कीर्तनरूप भक्तिका साधन करते-करते क्रमशः आत्माकी शक्ति बढ़ती जाती है। शक्ति वृद्धि होनेपर जड़ीय बन्धन ढीला पड़ जाता है। जड़-बन्धन जितना ही ढीला होता जाता है, आत्माकी अपनी वृत्ति भी उसी परिमाणमें प्रबल होती जाती है एवं साक्षात्दर्शन और साक्षात क्रिया उन्नति लाभ करती है। कोई-कोई कहते हैं—'अतद्-वस्तुको दूरकर 'तद्' वस्तु लाभ करनेका प्रयत्न करो।' इसको शुष्क-ज्ञान कहा जा सकता है। जीवोंमें अद्त-वस्तुको परित्याग करनेकी शक्ति कहाँ है? कारागारमें कैदी अपने अपराधोंकी सजा भोगता है। निश्चित सजा भोगे बिना, समयके पहले ही यदि वह जेलसे मुक्त होनेकी वासना करे तो क्या वह मुक्त हो सकता है? जिस अपराधमें वह बंद किया गया है, उस अपराधको क्षय करना ही तात्पर्य है। जीवात्मा भगवानका नित्यदास है। इसे भूल जाना ही उसका अपराध है। इसी अपराधके कारण वह माया द्वारा बद्ध हो पड़ता है और संसारमें सुख-दुःख और पुनः-पुनः जन्म-मरण भोग करता है। फिर संसार भोग करते-करते पहले-पहल जिस किसी कारणसे क्यों न हो, ईश्वरकी तरफ थोड़ीसी भी रुचि होनेपर श्रीमूर्तिका दर्शन करते-करते और भगवान्की लीला-कथा सुनते-सुनते उसका पूर्वस्वभाव (नित्य कृष्ण-दास्य) बल प्राप्त करता है। उसका यह स्वभाव जितना ही दृढ़ होता है, वह उतना ही चित्-साक्षात्कारके योग्य होता है। श्रीमूर्तिका सेवन तथा उसके सम्बन्धमें श्रवण और कीर्त्तन ही अति निम्नाधिकारीके लिये एकमात्र उपाय है। इसलिए महाजनोंने श्रीमूर्त्ति-सेवाकी व्यवस्था की है।,

मौलवी—'जड़वस्तु द्वारा एक मूर्त्ति कल्पना करनेकी अपेक्षा क्या मन-ही-मन ध्यान करना अच्छा नहीं है?'

गोराचाँद—'दोनों ही एक समान हैं। मन जड़के अनुगत होता है। अतएव वह जो कुछ भी चिन्ता-करता है, जड़वस्तुकी ही चिन्ता करता है। जैसे 'ब्रह्म सर्वव्यापी है,—कहनेसे हमारा मन ब्रह्मके सर्व-व्यापित्वकी चिन्ता कैसे करेगा? वह बेचारा तो उसे आकाशकी तरह ही मानेगा। वह इससे ऊपर जा कैसे सकता है? 'ब्रह्म-चिन्ता कर रहा हूँ,—ऐसा कहने से कालगत ब्रह्मका उदय अवश्य ही होगा। देश और काल जड़ वस्तुएँ हैं। यदि मानस ध्यान देश और कालसे परे न हुआ, तब जड़ातीत वस्तु कहाँ मिली? मिट्टी जल आदिको परित्याग कर दिक् और देशादिमें ईश्वरकी कल्पना की गयी। यह सब भूत-पूजा है। जड़ पदार्थोंमें एक भी ऐसा पदार्थ नहीं, जिसे अवलम्बन कर चिद्-वस्तु पायी जासके। वह पदार्थ है केवलमात्र—ईश्वरके प्रति भाव, जो केवलमात्र जीवात्मामें निहित है। ईश्वरका नामोच्चारण, लीला-गान और प्रतिमा (श्रीमूर्त्ति) में उद्दीपन प्राप्त होनेपर ही वह भाव क्रमश-बलवान होकर भक्ति हो पड़ता है। ईश्वरका चिन्मय-स्वरूप केवल भक्तिद्वारा ही अनुभूत होता है, ज्ञान और कर्म द्वारा नहीं।'

मौलवी—'जड़वस्तु ईश्वरसे पृथक है। कहते हैं, जीवोंको जड़में बाँध रखनेके लिए शयतानने जड़-पूजाकी व्यवस्था कर दी है। अतएव मेरे विचारसे जड़-पूजा न करना ही अच्छा है।'

गोराचाँद—ईश्वर अद्वितीय हैं। उनके समान और कोई नहीं है। जगत्में जो कुछ है, सब उनके द्वारा निर्मित है तथा उनके अधीन है। अतएव किसी भी वस्तुका अवलम्बन कर उनकी उपासना क्यों न की जाय, उनकी परितुष्टि हो सकती है। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसकी उपासना करनेसे उनको हिंसा हो। वे परम मङ्गलमय हैं। इसलिये यदि शयतान नामका कोई रहे भी, तो ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध उसमें कुछ भी करनेकी शक्ति नहीं हो सकती। यदि शयतान हो भी तो वह ईश्वरके अधीन एक जीव ही होगा। परन्तु हमारे विचारसे ऐसा प्रकांड जीव संभव नहीं। क्योंकि ईश्वरकी ईच्छाके विरुद्ध इस

जगत्में कोई भी कार्य नहीं हो सकता है, तथा ईश्वर से स्वतंत्र कोई भी व्यक्ति नहीं है। 'पाप कहाँसे उत्पन्न हुआ?'-आप यह पूछ सकते हैं। हम उत्तर देंगे—'जीव मात्रभगवान्का दास है। इस ज्ञानको विद्या कहा जा सकता है; और इस ज्ञानको भूल जाना ही अविद्याहै। किसी कारणसे जो सब जीव उस अविद्याका आश्रय लिये हैं, उन सबने अपने हृदयमें पाप-बीज बोया है।' जो नित्य पार्षद जीव हैं, उनके हृदयमें वह पाप बीज नहीं होता। शयतान नामक एक विचित्र व्यापारकी कल्पना न कर उपरोक्त अविद्या तत्त्वको भलीभाँति समझना आवश्यक है। अतएव भौतिक विषयोंमें ईश्वरकी उपासना करनेसे अपराध नहीं लगता। निम्न अधिकारीके लिए यह नितान्त आवश्यक है तथा उच्चाधिकारीका भी इससे विशेष कल्याण होता है। हमारे विचारसे 'श्रीमुर्त्तिकी पूजा करना अनुचित है'—यह कथन एक मतवादमात्र है। इस कथनकी पुष्टिकी न तो कोई युक्ति है और न कोई शास्त्रीय प्रमाण।'

मौलवी—'श्रीमूर्त्तिकी पूजा करनेसे ईश्वरका भाव प्रशस्त नहीं होता। उपासकके मनमें सर्वदा भौतिक भावनाएँ ही प्रबल रहती हैं।

गोराचाँद—'प्राचीन इतिहासोंके अनुशीलनसे आपके सिद्धान्तके दोषोंका पता लग सकता है। बहुतेरे अति निम्न-अधिकारसे श्रीमूर्त्तिकी पूजा आरंभ करते हैं और सत्संगके प्रभावसे उनका भाव जितना ही उच्च होता जाता है, वे उतना ही श्रीमूर्त्तिका चिन्मयत्व उपलब्धि कर प्रेम-सागरमें निमग्न होते हैं। स्थिर सिद्धान्त यह है कि-सत्सङ्ग ही सबका मूल है। चिन्मय भगवद्भक्तका संग होनेपर चिन्मय भगवद्भाव उदित होता है और भौतिकभाव दूर हो जाता है। क्रमशः उन्नत होना सौभाग्यकी बात है। दूसरी तरफ आर्यधर्मके अतिरिक्त समस्त धर्मोंके साधारण-लोग श्रीमूर्त्तिपूजाके विरोधी हैं, किन्तु विचारपूर्वक देखिये, उनमें कितने लोग चिन्मय भाव प्राप्त हुए हैं? वितर्क और हिंसामें ही दिन व्यतीत होते हैं, भगवद्भक्तिका उन्होंने अनुभव ही कब किया?'

मौलवी—'यदि आन्तर भावसे भगवद्भजन होता है, तो मूर्त्तिपूजा स्वीकार करनेमें कोई दोष नहीं है। मैं इसे मानता हूँ। किन्तु कुत्ता, बिल्ली, सर्प, लम्पट पुरुष आदिकी पूजा करनेसे भला भगवद्भजन कैसे हो सकता है? पूज्यपाद पैगम्बर साहबने ऐसी भूत-पूजा (बुतपरस्त) का विशेष तिरस्कार किया है।'

गोराचाँद-'प्रत्येक मनुष्य ईश्वरके प्रति कृतज्ञ है। वह जितना भी पाप क्यों न करे, बीच-बीचमें ईश्वर एक परम वस्तु है-इसे विश्वासकर जगत्की अद्भुत वस्तुओंको नमस्कार किया करता है। सूर्य, नदी, पर्वत, बृहत्-बृहत् जीव-जन्तु—इन सबको मूढ़-जीव ईश्वरकी कृतज्ञतासे उत्तेजित होकर स्वभावतः नमस्कार करता है एवं उनके निकट अपने हृदयकी बातोंको व्यक्तकर आत्मनिवेदन करता है। चिन्मय भगवद्भक्ति और इस प्रकारकी भूतपूजामें विशेष अन्तर रहनेपर भी ईश्वरके प्रति कृतज्ञता स्वीकार कर जड़-वस्तुओंको नमस्कार करनेका फल क्रमशः अच्छा ही होता है। अतएव युक्तिपूर्वक विचार करनेसे उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। सर्वव्यापी निराकार ईश्वरका ध्यान और उसके प्रति नमाज आदि भी शुद्ध चिन्मय भावसे रहित है; यदि ऐसा ही हुआ तो बिल्ली-पूजक आदिसे उनका पार्थक्य ही क्या रहा? हमलोगोंके विचारसे किसी प्रकारसे भी क्यों न हो ईश्वरके प्रति भावोदय और भावालोचना होनेकी नितान्त आवश्यकता है। यदि उन निम्नाधिकारियोंका तिरस्कार किया जाय अथवा उनकी दिल्लगी उड़ायी जाय तो जीवोंकी क्रमोन्नतिका द्वार एक दम बंद करना होगा। मतवादोंके चक्करमें पड़कर जो लोग साम्प्रदायिक हो पड़ते हैं, उनमें उदारताका अभाव होता है। इसलिये वे अपनेसे भिन्न उपासकोंका तिरस्कार करते हैं। उनका ऐसा करना नितान्त भूल है।'

मौलवी—'फिर क्या ऐसा कहना होगा कि सारी वस्तुएँ ईश्वर हैं और उन सबकी पूजा ईश्वरकी

पूजा है ? पाप-वस्तुओंकी पूजा करना भी क्या ईश्वरकी पूजा है ? क्या ईश्वर इस प्रकारकी पूजाओंसे सन्तुष्ट होता है ?'

गोराचाँद—हमलोग सभी वस्तुओंको ईश्वर नहीं कहते। इन सारी वस्तुओंसे ईश्वर एक पृथक-वस्तु है। सारी वस्तुएँ ईश्वर द्वारा सृष्ट और उसके अधीन हैं। इन सभी वस्तुओंसे ईश्वरका सम्बन्ध है। इसी सम्बन्धके कारण सारी वस्तुओंमें ही ईश्वर-जिज्ञासा हो सकती है। समस्त वस्तुओंमें ईश्वर जिज्ञासा होते-होते 'जिज्ञासा-आस्वादनावधि' —इस सूत्रके अनुसार चिन्मय-वस्तुका आस्वादन होता है। आपलोग परम पण्डित हैं। थोड़ा उदार दृष्टिकोणसे इस विषय पर विचार करेंगे। हमलोग अकिंचन वैष्णव हैं। अधिक तर्क वितर्कमें प्रवेश नहीं करना चाहते। आज्ञा हो तो हमलोग श्रीचैतन्य-मंगल-गीत सुनने जाँय।'

मौलवी सहेबने इन सब बातोंको सुनकर क्या स्थिर किया, समझ नहीं पड़ा। वे कुछ देर तक मौन रहकर बोले—'आपलोगोंके विचारोंसे मैं बड़ा खुश हुआ। किसी दिन और आकर फिर कुछ जिज्ञासा करूँगा। आज बड़ी देर हो गयी है, जाना चाहता हूँ।'

—ऐसा कहकर मौलवी साहब दल-बलके साथ घोड़ोंपर चढ़कर 'सातसाईका' परगनाकी ओर चल पड़े। बाबाजीगण आनन्दसे हरि ध्वनि देकर श्रीचैतन्य मंगल गानमें प्रवेश किये।

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त

बारहवाँ अध्याय

नित्य धर्म और साधन

जगतके समस्त तीर्थोंमें नवद्वीप धाम सर्व प्रधान तीर्थस्थान है। श्रीवृन्दावनकी तरह श्रीनवद्वीपकी भी परिधि १६ कोस है। १६ कोसमें अष्टदल पद्म है। श्रीअन्तर्द्वीप इस पद्मकी कर्णिका-स्वरूप विराजमान है। इसी अन्तर्द्वीपके ठीक बीचो-बीचमें श्रीमायापुर स्थित है। श्रीमायापुरके उत्तरमें श्रीसीमन्तद्वीप है। सीमन्तद्वीपमें श्रीसीमन्तिनी-देवीका है। मन्दिरके उत्तरमें बिल्वपुष्करिणी और दक्षिणमें ब्राह्मण-पुष्करिणी नामक दो ग्राम हैं। साधारणतः बिल्वपुष्करिणी और ब्राह्मण पुष्करिणीको मिलाकर सिमुलिया कहते हैं। अतएव नवद्वीपके उत्तरमें सिमुलिया ग्रामकी स्थिति है। श्रीमन्महाप्रभुके समय यहाँ पर बड़े बड़े पण्डितोंका वास था। श्रीशचीदेवीके पिता श्रीनीलाम्बर चक्रवर्तीका इसी ग्राममें निवास-स्थान था। इनके घरके निकट ही व्रजनाथ भट्टाचार्य नामक एक वैदिक ब्राह्मणका रहते हैं। बचपनसे ही व्रजनाथकी बुद्धि तीक्ष्ण थी। कुछ ही दिनोंमें वे न्यायशास्त्रके प्रकाण्ड विद्वान् हो गये तथा बिल्वपुष्करिणी, मायापुर, गोद्रुम, मध्यद्वीप, आम्रघट्ट, समुद्रगढ़, कुलिया, पूर्वस्थली आदिके बड़े बड़े पण्डित व्रजनाथके न्याय सम्बन्धी तर्क-वितर्कोंका लोहा मानने लगे। जहाँ कहीं भी पण्डितगण एकत्रित होते, व्रजनाथ न्यायपंचानन अपने न्यायके तीक्ष्ण तर्क-बाणोंसे उन्हें बिद्धकर जर्जरित करने लगते। एक दिन उनमेंसे एक नैयायिक पण्डित उनके तीक्ष्ण तर्कोंके आघातसे घायल होकर मन-ही-मन बड़ा दुःखी हुआ और तन्त्रशास्त्रोक्त 'मारणविद्या' द्वारा न्यायपंचाननको मार डालनेका संकल्प किया। वह रुद्रद्वीपके श्मशानमें दिनरात मारण मंत्रका जप करने लगा।

अमावस्याकी रात है। चारों ओर गहरा अन्धकार है। आधी रातके समय नैयायिक पण्डित श्मशानके बीचमें आसन लगाकर अपने इष्टदेवका आवाहन कर कहने लगे—'माँ! कलियुगमें केवलमात्र तू ही उपास्या हो। सुना है, तू अत्यन्त अल्पजप द्वारा ही

सन्तुष्ट होकर वर दिया करती हो। करालवदनि! तेरा दास बहुत दुःखी होकर अनेक दिनोंसे तेरा मंत्र जप रहा है। तू एक बार दया कर। माँ! मुझमें बहुतसे दोष हैं, फिर भी तू मेरी माँ है। मेरे सारे दोषोंको क्षमा कर आज दर्शन दे।'

इस प्रकार आर्तनाद करते-करते नैयायिक पण्डित ने ब्रजनाथ न्यायपंचाननके नामसे मंत्र उच्चारण कर अग्निमें आहुति प्रदान की। आश्चर्य है मंत्रकी शक्ति! आहुतिका देना था कि आकाशमें काली-काली घटाएँ घिर आयीं। जोरोंकी हवा चलने लगी। रह रहकर बिजली चमचम कर उठती। गड़-गड़हट इतने जोरोंकी होती मानो पास ही वज्रपात हो गया हो। बिजलीकी चमकमें विकट-विकट आकार वाले भूत-प्रेत दीख पड़ने लगे।

नैयायिक पण्डित कुछ डरे अवश्य, फिर भी अपनी सारी स्नायवीय-शक्तिका संचालन कर बोले—'माँ! अब और देर न करो।'

उसी समय आकाशमें दैववाणी हुई—'चिन्ता न करो। ब्रजनाथ न्यायपंचानन अब अधिक दिनोंतक तर्क-वितर्क न करेंगे। थोड़े ही दिनोंमें वे तर्क-वितर्क छोड़कर शान्त हो जायेंगे। शान्त होकर घर लौट जाओ।

दैववाणी सुनकर नैयायिक पण्डित बड़े सन्तुष्ट हुए और तंत्रकर्त्ता देवदेव महादेवको बार-बार प्रणाम करते हुए अपने घर लौटे।

ब्रजनाथ न्यायपंचानन इक्कीस वर्षकी उम्रमें ही दिग्विजयी पण्डित हो पड़े। वे दिनरात 'श्रीगङ्गेशोपाध्यायकी' ग्रन्थावलीका अध्ययन करते रहते। काणभट्ट द्वारा रचित 'दीधिति' नामक न्यायके टिप्पनी- ग्रन्थमें अनेक दोष दिखाकर वे स्वतंत्र रूपमें एक टिप्पनी-ग्रन्थकी रचनामें लग गये। विषयकी तनिक भी चिन्ता नहीं। अथच 'परमार्थ'-शब्द भी कभी उनके कर्णगोचर नहीं हुआ था। 'घट-पट' और 'अवच्छेद-व्यवच्छेद' आदि लेकर तर्क करना ही उनका एकमात्र कार्य था। चलते-फिरते, उठते-बैठते दिन-रात पार्थिव-विशेष और द्रव्यकाल-आदिकी चिन्तासे उनका हृदय भरपूर रहता था।

एक दिन शामको ब्रजनाथ भागीरथीके तट पर बैठे-बैठे गौतमके सोलह पदार्थोंका चिन्तन कर रहे थे। उसी समय एक न्यायके विद्यार्थीने आकर उनसे कहा—'न्यायपंचानन महाशय जी! क्या आपने निमाई पण्डितकी 'परमाणु-खण्डन' सम्बन्धी तर्कोंको (फाँकियोंको) सुना है?'

न्यायपञ्चाननने सिंहकी तरह गर्जकर कहा—'निमाई पण्डित कौन? क्या तुम जगन्नाथ मिश्रके पुत्रकी बात कह रहे हो? उनकी कुछ युक्तियोंको बतला सकते हो?'

विद्यार्थी—'कुछ दिन पहले इसी नवद्वीपमें निमाई पण्डित नामक एक महापुरुष हुए हैं। उन्होंने न्याय सम्बन्धी अनेक नयी-नयी युक्तियोंकी रचना कर 'काणभट्ट शिरोमणि' को तंग कर दिया था। वे न्यायशास्त्रके तत्कालीन एक अद्वितीय विद्वान् थे। परन्तु न्यायशास्त्रमें पारंगत होकर भी वे न्यायशास्त्रको अत्यन्त तुच्छ समझते थे। केवल न्यायको ही नहीं, बल्कि समस्त संसारको अत्यन्त तुच्छ मानकर परिव्राजकका (संन्यास) पद ग्रहण किया था। आजकलके वैष्णवजन उन्हें पूर्णब्रह्म मानते हैं तथा 'श्रीगौरहरि मंत्र' द्वारा उनकी पूजा करते हैं। न्यायपञ्चानन महाशयजी! आप एक बार उनकी युक्तियोंको अवश्य देखें।'

निमाई पण्डितकी न्यायसम्बन्धी युक्तियोंकी प्रशंसा सुनकर ब्रजनाथ न्यायपञ्चाननको उन युक्तियोंको जाननेके लिये कौतुहल पैदा हुआ। उन्होंने बहुत परिश्रम कर कहीं-कहींसे उनकी कुछ युक्तियोंका संग्रह किया। मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जिस विषयके प्रति उसकी श्रद्धा होती है, उस विषयके अध्यापकोंको वह स्वाभाविकरूपमें श्रद्धा करता है। खासकर जीवित महापुरुषोंके प्रति नाना कारणोंसे साधारणलोगोंकी श्रद्धा सहज ही नहीं हुआ करती। परलोकप्राप्त महाजनोंके प्रति लोगोंकी अधिक श्रद्धा होती है। इसीलिये निमाई पण्डितकी

युक्तियोंका अनुशीलन कर व्रजनाथके हृदयमें निमाई पण्डितके लिये दृढ़ श्रद्धा हुई।

वे कहने लगे—'हा निमाई पण्डित! यदि मैं उस समय पैदा हुआ होता, तो तुमसे न जाने कितना ज्ञान अर्जन किया होता। निमाई पण्डित! तुम एक बार मेरे हृदयमें प्रवेश करो। तुम सचमुच ही पूर्ण-ब्रह्म हो। यदि ऐसा न होता, तो क्या न्यायकी ऐसी-ऐसी सुन्दर युक्तियाँ (फाँकी) तुम्हारे मस्तिष्क-से निकल सकती थीं? तुम सचमुच ही गौरहरि हो, क्योंकि तुमने इन विचित्र युक्तियों (फाँकी) की सृष्टिकरके अज्ञान-रूप अन्धकारका विनाश किया है। अज्ञान अन्धकार अर्थात् काला है। तुमने 'गौर' होकर उस 'कालिमाको' दूर किया है। तुम 'हरि' हो, क्योंकि, जगत्का चित्त हरण कर सकते हो। तुम्हारी न्यायकी युक्तियों (फाँकी) ने मेरे चित्तको हर लिया है।'

ऐसा कहते-कहते व्रजनाथ कुछ उन्मत्त होकर 'हे निमाई पण्डित! हे गौर हरि! दया करो।' कह कर जोर-जोरसे चिल्लाने लगे। मैं कब तुम्हारे समान फाँकी (न्यायकी युक्ति) सृष्टि कर सकूँगा? तुम्हारी दया होने पर न्याय-शास्त्रका न जाने कितना बड़ा विद्वान बन जाऊँगा?'

व्रजनाथने मन-ही-मन सोचा—'जो लोग गौर हरिकी पूजा करते हैं, वे, ऐसा प्रतीत होता है, मेरे ही जैसे निमाई पण्डितके प्रति न्याय-पाण्डित्यके कारण ही आकृष्ट हुए हैं। देखा जाय, गौरहरिके कौन-कौनसे न्याय-ग्रन्थ उनके निकट हैं? ऐसा सोच कर उन्होंने इसका अनुसंधान करनेके लिए गौर-भक्तोंके साथ सत्संग करना स्थिर किया। 'निमाई पण्डित' 'गौरहरि' आदि शुद्ध भगवन्नामोंका बार बार उच्चारण करनेसे तथा गौर-भक्तोंके सङ्गकी वासना होनेसे व्रजनाथकी एक बड़ी सुकृति हो गयी।

व्रजनाथ एक दिन भोजन कर रहे थे। उनकी पितामही पास ही बैठकर उन्हें खिला रही थी। उन्होंने पितामहीसे पूछा—'दादी! क्या तुमने गौर-हरिको देखा था?'

श्रीगौराङ्गका नाम सुनते ही व्रजनाथकी पिता-महीको अपने बाल्यजीवनकी सारी बातें स्मरण हो आयीं। उन्होंने कहा—'अहा! क्या ही मनोहर रूप था उनका? क्या उस मधुर मूर्तिको फिर देख सकूँगी? उस भुवनमोहन सुन्दर रूप को देखकर क्या कोई संसार कर सकता है? जब वे भाववेशमें हरिसंकीर्त्तन करते, नवद्वीपके पशु-पक्षी, वृक्ष, लता आदि सभी प्रेम में मत्त होकर तन-मनकी सुध-बुध खो बैठते। आज भी जब वे भाव हमारे स्मरण-पथ पर उदित होते हैं, तो आँखें बरबस बरसने लगती हैं।'

व्रजनाथने फिर पूछा—'दादी! क्या तुम उनके जीवनकी कोई घटना जानती हो?'

मातामहीने उत्तर दिया—'क्यों नहीं जानती हूँ, जब वे शची माताके साथ अपने मामाके घर आते, तब हमारे घरकी वृद्धाएँ उनको शाक और अन्न खिलाया करतीं। वे शाककी खूब प्रशंसा करते-करते बड़े प्रेमसे भोजन करते।' उसी समय व्रजनाथकी माताने उनकी थालमें शाक परोसा। शाक देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। वे नैयायिक निमाई पण्डितका अत्यन्त प्रिय शाक मानकर बड़े प्रेमसे भोजन करने लगे। परमार्थ-ज्ञानसे रहित व्रजनाथ निमाई पण्डितकी पाण्डित्य-प्रतिभाके प्रति बड़े ही आकृष्ट हुए। निमाई पण्डित उनको बड़े अच्छे लगते। निमाईका नाम उनके कानोंको बड़ा ही प्रिय लगता। 'जय शचीनन्दन' की आवाज देकर भिक्षा माँगनेवालोंको बड़े आदरके साथ भिक्षा देते। कभी कभी मायापुर चले जाते, वहाँ बाबाजी लोगोंके निकट गौराङ्गका नाम श्रवण करते तथा उनके विद्याध्ययनके सम्बन्धमें अनेकों प्रश्न करते। इसी तरह दो चार महीने बीते। व्रजनाथ, पहलेके व्रजनाथ न रहे। सब बातोंमें निमाई ही अच्छे लगते। न्यायके अध्ययन और अध्यापन तथा शुष्क तर्क-वितर्कोंमें उनकी तनिक भी रुचि न रही। अब नैयायिक निमाई

के बदले भक्त निमाईने उनके हृदय-राज्य पर अधिकार कर लिया है । मृदङ्ग और करतालका शब्द सुनते ही उनका हृदय नाच उठता है । शुद्ध-भक्तोंको देख कर मन-ही-मन प्रणाम करते हैं । श्रीनवद्वीप भूमिको श्रीगौराङ्गदेवकी आविर्भाव-भूमि मानकर भक्ति करते हैं । उनके प्रतिद्वन्द्वी पण्डित उनकी ऐसी दशा लक्ष्य-कर बड़े प्रसन्न हुए । अब वे निडर होकर घरसे निकलने लगे । नैयायिक पण्डितने सोचा—'उनके इष्टदेवने ही व्रजनाथको निकम्मा बना दिया है । अब कोई डरकी बात नहीं है । (क्रमशः)

विविध-सम्वाद

श्रीश्रीजन्माष्टमी और नन्दोत्सव

गत २ भाद्र, १६ अगस्त सोमवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखामठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीश्रीजन्माष्टमीका व्रतोपवास-अनुष्ठान खूब समारोहके साथ मनाया गया । उस दिन रात १२ बजे तक निर्जला उपवास रख कर कृष्ण-लीलाका श्रवण और कीर्त्तन होता रहा । प्रातःकाल मङ्गल-आरति और कीर्त्तनके बादसे आधी रात तक श्रीमद्भागवतका पारायण होता रहा । श्रोताओं और दर्शकोंकी भारी भीड़ लगी रही । श्रीश्रीराधा विनोदविहारी अपने भुवन-मोहन अखिल सौन्दर्यसे दर्शकोंका चित्त बरबस अपनी ओर आकर्शित कर रहे थे । आधी रातके समय विराट संकीर्त्तन और जयध्वनिके बीच श्रीकृष्णका अर्च्चन-पूजन और भोग राग विधिवत सम्पन्न हुआ । दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके दिन निमंत्रित और अनिमंत्रित सैकड़ों व्यक्तियोंको विविध प्रकारका विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया ।

श्रीश्रीराधाष्टमी

विगत १५ भाद्र, १ सितम्बर, रविवारको सर्व-शक्तियोंकी मूल अंशिनी महाभाव-स्वरूपा श्रीश्रीराधा-रानीकी आविर्भाव तिथि खूब समारोहके साथ मनायी गयी है । उपा-कीर्त्तनके पश्चात् त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति कुशल नारसिंह महाराजजीने श्रीश्रीराधा-तत्त्व एवं इसके वक्ता और श्रोताके अधिकारके सम्बन्धमें एक संक्षिप्त किन्तु मार्मिक भाषण दिया । श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्-भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सहकारी-सम्पादक श्रीपाद रसराज व्रजवासी "न्याय-कोविदजी" आदि उस सभामें उपस्थित थे । दोपहरमें महाप्रसाद वितरण किये जानेके बाद उत्सव समाप्त हुआ ।

श्रीश्रीबद्रीनारायण-केदार-परिक्रमा-संघका प्रत्यावर्त्तन

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उद्योगसे यात्रियोंका एक दल हिमालयकी गोदीमें अनेक तीर्थ-पार्षदोंके साथ विरामान महातीर्थ श्रीश्रीबद्रीनारायणकी परिक्रमा कर मथुरा-वृन्दावन होते हुए विगत १५ भाद्र, १ सितम्बर रविवारको सकुशल हावड़ा लौट आया है । परिक्रमा-संघका संचालन ॐविष्णुपाद परमहंस परि-व्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव महाराजजीके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्-भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और श्रीपाद रसराज व्रजवासी 'न्यायकोविद' जी ने बड़े ही सराहनीय ढङ्गसे किया है । यात्रीगण दुर्गमसे दुर्गम पथको बड़े आराम और व्यवस्थित ढङ्गसे पारकर हरिद्वार, हृषिकेश, लक्ष्मण झूला, देव-प्रयाग, कीर्ति-नगर, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, अगस्तमुनि, चन्द्रपुरी, गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, केदारनाथ, पीपलकोठी, गरुड़-

गङ्गा, योशीमठ, पञ्चबद्री, पञ्चशिला, विष्णु-प्रयाग, तप्तकुण्ड, वसुधारा, नन्द-प्रयाग, आदिबद्री, व्यास-गुफा, और भीमशिला आदिका दर्शन कर लौटती समय श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें ४ दिन ठहर कर मथुरा-वृन्दावन आदि श्रीकृष्णलीला-स्थलियोंकी परिक्रमा कर स्वस्थ्य शरीरसे अपने-अपने घर लौटे हैं ।

———

हिन्दू-साधु-संन्यासियोंका नियंत्रण बिल वापिस

बड़े हर्षकी बात है कि हिन्दू साधु-संन्यासियोंका नियंत्रण करनेके लिये गत २७ जुलाईको भारतीय लोक-सभामें जो विधेयक पेश किया गया था, उसे २३ अगस्तको वापिस ले लिया गया है। इस विधेयकको 'श्रीराधारमण' नामक एक संसद-सदस्य (कांग्रेस) ने प्रस्तुत किया था । श्रीभागवत पत्रिका वर्ष ३, युग्म संख्या ६-७ में उक्त विधेयकका एक विस्तृत प्रतिवाद (परमहंस परिव्राजकाचार्यवर्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज--प्रेसिडेन्ट, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा द्वारा लिखित) प्रकाशित हुआ था, जिसमें बड़े ही जोरदार शब्दोंमें उक्त विधेयककी सम्पूर्णरूपेण अवैधता और अव्यवहारिकता प्रमाणित कर उसे वापिस लेनेके लिये अनुरोध किया गया था। उस प्रतिवादकी प्रतियाँ लोक-सभा तथा विधान सभाके प्रत्येक सदस्यको भेजकर उनसे उक्त विधेयकको रद्द करनेके लिये अनुरोध किया गया था । उस प्रतिवादका सर्वत्र ही बड़ा आदर हुआ । विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंने, संस्थाओं ने तथा जनता और साधु-सन्तोंने उस विधेयकका डटकर विरोध किया । लोक-सभामें सिवा श्रीमती लक्ष्मीबाई संगामाके अन्यान्य समस्त दलोंके सभी सदस्योंने उस बिलका विरोध किया और उसे संविधान-के विरुद्ध बतलाया । परिणाम-स्वरूप प्रस्तावकको अपना उक्त विधेयक वापस लेना पड़ा है ।

———

"Shri Bhagawat Patrika"

The following statement about ownership and other particulars relating to the "SHRI BHAGAWAT PATRIKA" is published as required by Clause 19-D of the Press Registration of Books Act of 1867 as modified in 1956 :—

1. Place of Publication.	Mathura.
2. Periodicity of its Publication.	Monthly.
3. Printer's Name, Nationality and Address :	Hemendra Kumar, Indian, Dampier Nagar, Mathura.
4. Publisher's Name, Nationality and Address :	Shri Rasraj Brajbasi. Hindu (Gaudiya Saraswat Brahmin), Shri Keshabji Gaudiya Math, Mathura.
5. Editor's Name. Nationality and Address :	Tridandi Swami Shri Shrimad Bhakti-Vedant Narayan Maharaj. Hindu (Gaudiya Saraswat Brahmin), Shri Keshabji Gaudiya Math, Mathura.
6. Name and address of the owner of the newspaper :	Tridandi Swami Shri Shrimad Bhakti Prajnan Keshab Maharaj; President, Shri Gaudiya Vedant Society, Mathura.

I, Rasraj Brajbasi, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

(*Sd.*) Rasraj Brajbasi
Publisher.

Date : 31th August 1957.